

पंचम सोपान – सुन्दर काण्ड

ओम तत्सदात्मने नमः

जामवंत के वचन सुहाए। सुनि हनुमान हृदय अति भाए॥

तब लागि मोहि परखेहु तुम भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥

जब लागि आवहुं सीतहिं देखी। होइ काज मोहि हरष विसेषी॥

सुन्दर काण्ड का समाजिक क्षेत्र में बड़ा महत्व है। जो लोग कामना करके रामायण पढ़ते-सुनते हैं, उनके यहाँ सुन्दर काण्ड का बड़ा महत्व है। दूसरे काण्डों से श्रेष्ठ इसे मानते हैं। इसी की आराधना अनुष्ठान करते हैं। इसी का पाठ पारायण करते हैं। और गोस्वामी जी ने भी इसको अच्छा माना। इसलिये इसका नाम करण किया सुन्दर काण्ड। तो समझना चाहिये कि इस काण्ड में जो विवरण है, सोच है, शैली है, उसमें कुछ निराला-पन है। वैसे यह अपनी-अपनी समझ है। रुचि है। तो देखिये, दुनिया में शक्ति का ही सबसे बड़ा महत्व है। तो इसमें शक्ति-सीता का पता लगा, खुशखबरी मिली। शक्ति का, सीता का ही विशेष वर्णन इसमें पाया जाता है, इसलिये सुन्दर है। साधन जो भी किये जायें, शक्ति से ही तो होते हैं सब। और ताकत क्या है? सीता शक्ति। शक्ति कहो देवी कहो। कुछ भी कह सकते हो। तो एनर्जी, जो शक्ति होती है, उसी का महत्व विशेष होता है। वह चाहे तो सब कुछ करा सकती है। वही मुख्य है। परमात्मा में हरकत नहीं होती है। परमात्मा में पारदर्शी चीज़ें हैं सब। परमात्मा कोई पदार्थ नहीं है। इसलिये परमात्मा सबसे परे है। अगर परमात्मा कोई पदार्थ का अंश होता जल होता, वायु होता, अग्नि-आकाश-पृथ्वी का अंश होता तो पकड़ में आ जाता। परमात्मा इन सबसे परे है। और इतना निर्लेप है, कि सबको प्रसुप्त रूप से संजोये है, पूरी क्षमताएँ। ऐसी शैली से संजोये हैं, कि आटोमैटिक (स्वचालित) नियमावली बन गयी है। इसलिये इस पर कोई तर्क नहीं कर सकता। उसे कोई काट नहीं सकता। अच्छे है, अभेद्य है, व्यापक है। ऐसे गुणों से आच्छादित है वह। जो कि शक्ति धारित है, क्षमता धारित है, सब कुछ को धारण करता है, और फिर इससे मतलब नहीं रखता, इसलिये वह पकड़ से बाहर रहता है। बस वही भगवान है। अगर तुम कोई चीज़ अपने पास रखते हो, और उसमें आसक्ति है तुम्हारी, तो पकड़ जाओगे। तो ऐसी अगर कला आ गयी है तुम्हारे पास, कि उसमें आसक्ति नहीं रह गयी, तो तुम पकड़ में नहीं आओगे। तुम उसे पकड़ सकते हो, वह तुम्हें नहीं पकड़ सकती। इसलिये महात्मा लोग, चार अवस्थाएं मान लेते

हैं-जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय। सत रज तमइन तीन गुणों से तीन अवस्थाएँ हैं, और इन तीनों में जो साझा अवस्था है, वह तुर्या है वह निर्लेप परमात्मा है। तुरीयमेव केवलं।' वह किसी से मतलब नहीं रखता। जैसे यह पोल है, निर्लेप। इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पंच महाभूत और तीन गुण ये सब मिल कर अष्टधा मूल प्रकृति बन कर तैयार हो गई। और अपने आप काम होते रहते हैं। अब एक लड़की पैदा होती है। उन्नीस-बीस साल में एक बच्चा पैदा कर देती है। बच्चा जब पैदा होता है, तो दो किलो का होता है, और फिर बड़ा होकर दो कुंतल, ढाई कुंतल का हो जाता है। तो इसमें क्या बढ़ जाता है? कैसे बढ़ जाता है? और फिर वह और पैदाकर देता है। ऐसे यह सृष्टि गति मान है। इसमें चैतन्यता है, जड़ में। जड़ पदार्थ का संसार है, इसमें चेतन क्रिया कर रहा है। तो इस शक्ति का जब हम दुरुपयोग करते हैं, तो रावण अर्थात् मोह के पास में चली जाती है। संसारोन्मुख हो गयी। और जब शक्ति का सदुपयोग होता है ईश्वरोन्मुख। तो राम के पास रहती है। यही दो चीज़ हैं। और महात्मा के पास तो यह होती नहीं। महात्मा तो बस आदान-प्रदान करते हैं। रावण का स्थान अविद्या जनित है, ईश्वर का स्थान विद्या जनित है। महात्मा इनसे परे होता है। इसलिये महात्मा का स्थान ज़्यादा बड़ा मान लिया जाता है।

“राम से अधिक राम का दासा।”

तो अब इस पांचवें सोपान में पांचवीं भूमिकी की बातें आएंगी। असंशक्ति की साधना चलेगी। असंशक्ति अर्थात् आसक्ति रहित अवस्था - यह बहुत बड़ी चीज है। साधना की इस उच्च अवस्था में पहुँचकर साधक के वैराग्य रूप हनुमान की कसौटी भली प्रकार से हो जाएगी और वह खोई हुई क्षमता को फिर से प्राप्त करने में जुट जाएगा।

अब यहां से साधना का जो लक्ष्य है उस लक्ष्य की ओर साधक तेजी से बढ़ जायगा। उसके अन्दर ब्रह्म ज्ञान रूप बन्दरों की अजेय सेना तैयार हो चुकी है। उसे जीवात्मा का मार्ग दर्शन मिलने लगेगा। अब उसे संसार रुपी समुद्र से पार होने की युक्ति मिल जाएगी और वह अपने गंतव्य की ओर बढ़ता चला जाएगा।

तो अब शक्ति-सीता की खोज में साधक के अन्दर जानकारी रुपी जामवंत की प्रेरणा से वैराग्य रुपी हनुमान इस संसार-समुद्र के ऊपर उड़ान भरेगा।

अब हनुमान का काम आ गया। जो अनुराग की चरम सीमा है वह अंगद के रूप में बताई गयी थी। साधक को जब अनुराग का नशा आ जाय और वह

कान्टीन्यू रह जाय वह वैराग्य है, उसका नाम हनुमान है। वह जा रहा है। शक्ति की खोज करेगा।

जिभि अमोध रघुपति कर बाना। एही भांति चलेउ हनुमाना॥

जलनिधि रघुपति दूत विचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी॥

हनुमान जी को आकाश मार्ग से जाते हुए समुद्र ने देखा, तो मैनाक पर्वत से कहा, कि ऊपर को बढ़ जाओ और इनको आराम दो। यह मैनाक, जो मैं है, यह अहंता, यह बड़ा भारी विकार है। लेकिन इसको हनुमान ने स्वीकार नहीं किया। मैनाक पर्वत आकार खड़ा हो गया। जबरदस्ती उसने विश्राम हेतु प्रस्ताव किया। जैसे कोई महात्मा भजन करे। और कोई भक्त रोटी बनाकर उसे देने को पहुंच जाय। यह तो चारों तरफ परिवेश में हो जाता है, कि यह भजन ठीक कर रहा है। परिवेश में एक करेंट सबके मन में दौड़ जाता है कि महात्मा साधन ठीक कर रहा है। सबके हृदय में सेवा करने की प्रेरणा हो जाती है। भावना बनती है, कि इससे कल्याण होगा। लेकिन साधक को ये सब बातें स्वीकार नहीं करना चाहिये। इन बाहरी सेवाओं से निर्लेप रहे तो ठीक रहता है। यदि लोगों की सेवा पूजा साधक स्वीकार कर लेगा, तो अहंकार आएगा। कि मैं महात्मा हो गया हूँ – यह भाव, लोक मान्यता से आता है। गोस्वामीजी कहते हैं – लोक मान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु।’ इससे बचना चाहिए। ऐसा नहीं कि कोई सेवा करे, तो पैर फैला दे, कि मेरा पैर छुओ। देखो-हनुमान ने क्या किया ?

दो.- ‘हनूमान तेहि परसा, पुनि मन कीन्ह प्रणाम।

राम काजु कीन्हे बिन, मोहि कहां विश्राम॥’

साधक को भगत से कह देना चाहिये कि यह रोटी पैसा ले जाओ, मुझे भजन करने दो। मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है। इस प्रकार इसे साधक को अपने ऊपर घटाना पड़ता है। ऐसे-ऐसे यह साधन क्रम चलता है। पहले यह समझ में नहीं आता, फिर शनैः-शनैः, दबाते-दबाते सब बैठ जाता है। महात्मा को ऐसा होना चाहिये, जैसा कि हनुमान जी ने उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रणाम कर लिया मन ही मन और यह कहते हुए आगे बढ़ गए कि तुम अपना काम करो और मुझे अपने काम में लगा रहने दो। इससे छूटे तो फिर अब आगे माया दूसरा गेयर लगाती है।

जात पवन सुत देवन देखा।

जानै कहूँ बल बुद्धि विसेषा॥

सुरसा नाम अहिन की माता।

पठइन्ह आइ कही तेहि बता॥

आजु सुरन्ह मोहिं दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवन कुमारा॥

यहां माया के तीन गेयर हैं। हनुमान जी ने पर्वतों के रूप में प्रस्तुत पहले गेयर को दबाकर पाताल पहुंचा दिया। ये जो छोटी-छोटी बातें हैं। इनको तो साधक पार कर लेता है। किन्तु इसके आगे दूसरा गेयर, 'मैं' के रूप में, यही मैनाक खड़ा है। साधक उसे भी जब पार कर ले, तो तीसरे गेयर के रूप में सुरसा आ गयी। यह सुरसा क्या है? लोगों की सोच में जो भाव बन गया है कि यह साधक आध्यात्मिक विषय में आगे बढ़ा हुआ है, इसी लोक मान्यता में आसक्ति है सुरसा। इस प्रकार यह सुन्दर काण्ड आध्यात्मिक विषय को हमारे सामने खड़ा कर देता है, लेकिन साधक पूरा-पूरा कंपोजीशन नहीं कर पाता। इसमें हम लोग युक्ति लगायें तो समझ में आ जाय। लेकिन यह कौन करे? सुननेवाला ही नहीं है। रिले किसके लिये करें। यह बड़ा गंभीर विषय है। सुरसा नाम अहिन की माता। सुरसा कहते हैं, जो अहम् युक्त सुरअनुगत अन्वय व्यतिरेक युक्ति से चेतन का प्रतिबिम्ब सांसारिक भावनाओं में जहां-तहां मिलता है। जो हमारी इंद्रियों और अन्तःकारण में संसार की छाप गहराई से पड़ी है। जो मूल इच्छा है। मूल कामना है। वही मूल समस्या सुरसा है। संसार की यह जो गति विधि इंद्रियों में प्रवेश कर गयी है, उनमें जो संबंध बन गया है, उसका नाम है सुरसा। तो यह स्थूल शरीर है। सुरसा इसकी पहरेदार है। सूक्ष्म शरीर की पहरेदार है सिंहिका। और कारण शरीर की पहरेदार लंकनी है। तो क्या पहले औरतें पहरा देती थीं? स्त्रीलिंग है माया, स्त्री ही पहरा देगी। पुरुष नहीं। इसलिये लंकनी सिंहिका और सुरसा सभी स्त्री पहरेदार हैं। अंतःकरण में जोर लगाये हैं देवता-सुरसा तुम जाओ तुम परीक्षा लो, साधक जा रहा है। इन तीनों लोकों में, तीनों देहों में, तीनों अवस्थाओं में, पास होकर, निकल कर, गुणातीत अवस्था नाम की वस्तु को लाना है। ला पायेगा, या नहीं ला पायेगा, इसका इक्जाम होता है। साधक की जो वृत्ति है - वैराग्य, वह हनुमान है। संसार समुद्र है। सुरसा इसकी पहरेदार है। वह इक्जाम लेती है। साधक कीस्थिति कैसी है? कितना पावरफुल है? वह संसार-समुद्र से पार हो सकता है या नहीं? तो यह परीक्षा साधक के अन्दर, उसके वैराग्य की हो रही है।

तो सुरसा कोई औरत नहीं है। साधक के अन्तःकरण की बात है। शरीर में सुरत लगाने वाली विषयासक्ति ही सुरसा है। उसे देवताओं ने कहा कि तुम परीक्षा तो लो, कि यह हमारा काम सही बना देगा कि नहीं बनायेगा। जब साधक ध्यान करने लगता है, उसे भूख-प्यास लगती है। वह एक रस कैसे बैठ सकता है? ये बाधाएं

आती हैं, और पीछा नहीं छोड़ती। ये साधक को आगे नहीं जाने देती। यह संसार की गतिविधि साधक को आगे नहीं बढ़ने देती जब वह किसी ढंग से निकलना चाहता है। हनुमान ने त्याग बताया विनम्रता दिखाया फिर भी वह नहीं मानती।

कबनेहु जतन देहि नहिं जाना।

ग्रससि नमोहिं कहेउ हनुमाना॥

तो यह है सर्वसमर्पण। साधक का जब तक सर्वसमर्पण नहीं होता, तब तक ये सांसारिक विघ्न उपद्रव करते हैं। यह सुरसा, सुरत जो दूसरों में लगी है, उसे आगे नहीं जाने देती। जब पूर्ण समर्पण हो गया। हमारा कुछ नहीं रह गया। हम खाने के लिए अपने को परोस दिये, प्रस्तुत कर दिये, समर्पित हो गये, तब कोई नहीं खा सकता। अब युक्ति मिल गयी। अब जीत जायेंगे। संसार की यह उल्टी रीति है, कि जब तक हम 'बच जायं', कहते हैं, तो वह खा लेगी। किन्तु जब हम पूर्ण समर्पित हो गये, तो नहीं खा पायेगी। अब युक्ति मिल गयी। तब फिर क्या किया, कि सुरसा ने सौ योजन का भारी शरीर बना लिया। हनुमान ने छोटा सा रूप बना लिया। सौ योजन मुख का मतलब है, कि उसे बन्द करने में आधा घंटा का समय लगेगा। तो उस आधा घंटा में - मुंह में गया, जीभ में नाचा कूदा, कंठ में गया, स्टमक में गया, और लीवर वगैरह में, देख सुन कर, बाहर आ कर खड़ा हो गया। और बोला माता, अब तू अपना मुख बंद कर ले। जो तुम्हें खाना था, मैं वह सब करके, तुम्हारे पेट में पच कर बाहर निकल कर आ गया हूँ। अब मुझे छुट्टी देदे। तो सुरसा हार गयी और हनुमान हार कर जीत गये। इस प्रकार शरीर में माया की जो आसक्ति थी, वह मूर्ख बन कर रह जाती है। सर्वसमर्पण से वह जीत गया। जब तक पचास पैसा या अस्सी पैसा समर्पण है, तब तक काम नहीं चलेगा। जब सौ का सौ पैसा समर्पण हो जायेगा। तब युक्ति मिल जायेगी। फिर उसे कोई नहीं रोक सकता। क्योंकि उसी परमात्मा की विद्या उसी की अविद्या। वही परमात्मा खाने वाला, उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं यही तो रहस्य है। तो बस, सुरसा कुछ नहीं कर पायी। आशीर्वाद देना ही पड़ा कि जाओ हनुमान। तुम्हें कोई कहीं बाधा नहीं आयेगी। तुम्हारी परीक्षा हमने ले ली। तुम हर बात में सदैव सफल रहोगे।

दो.- राम काजु सब करिहु, तुम्ह बलबुद्धि निधान।

आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान॥

निसिचरि एक सिंधु महं रहई।

करि माया नभ केखग गहई॥

स्थूल शरीर की परीक्षा हो चुकी, अब सूक्ष्म शरीर की बारी आती है। शरीर का जो भार था, वह कुछ कम हुआ। साधक आगे बढ़ा तो सूक्ष्म शरीर में गया। सूक्ष्म शरीर संकल्पों की दुनिया है। संकल्प जो परछाई की तरह हैं। यह विषय रूपी पानी है। और उसमें जो संकल्प रूपी परछाई पड़ती है। उसको पकड़ने वाली यह सिंहिका। अब तुम यहां बैठ कर भजन करते हो, और तुम्हारे रूप को मन में पकड़ कर, कोई तुम्हारे पास विषय के संकल्प पेश कर रहा है। तो तुम समझ नहीं पाये, और उसके प्रभाव से तुम्हारे अन्दर, भजन को छुड़ाकर विषय के संकल्प आ गये। तो इस तरह यह संकल्प रूपी परछाई, को पकड़ कर खा जाती है। साधक ने कोई गलत कदम उठा लिया, तो नष्ट हो गया। यह परेशानी, साधकों को अमूमन आती रहती है। तुम समझ नहीं पाते। कभी-कभी तुम लोग ऐसा महसूस करोगे, कि जैसे प्यास लगी है। किन्तु प्यास तुमको लगी नहीं है। तो सोचो कि वह संकल्प तुम्हारे पास कैसे आया ? तो इसका मतलब है, कि किसी अन्य व्यक्ति में प्यास जगी है, और उसके अन्दर का संकल्प, हमारे मन में आ गया। ऐसे पता लगाना चाहिये, तो अनुभूतियां आती हैं। इस तरह के जो संकल्प आ जाते हैं, वे हैं परछाइयां। जैसे कोई लोग हमसे मिलने आये। और हमारे रूप को देखकर पता नहीं अपने मन में क्या-क्या कल्पना करने लगे। और वे कल्पनार्यें झट से हमारे अन्दर भी आ गयीं। वह परछाई रूपी कल्पना। और उसी के आधार पर हमने कोई गलत कदम उठा लिया। तो समझो इस तरह यह है सिंहिका। यह संसार की समस्या अनादिकाल से है। तथा सुषुप्त है।

सोइ छल हनूमान सन कीन्हा। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हा।

ताहि मारि मारुत सुतबीरा। वारिधि पारगयउ मति धीरा॥

साधक समझ गया, कि यह मेरा संकल्प नहीं है। मेरी प्रवृत्ति के विरुद्ध संकल्प है। यह किसी दूसरे का संकल्प था। मैं इस पर नहीं चल सकता। इसीलिये बार-बार ध्यान किया जाता है। इससे अपने मन की चाल (प्रवृत्ति) का पता चल जाता है। हमारे मन का यह स्वभाव है। जब दूसरे जाति के मन का संकल्प आयेगा, तो दूसरी शैली का होगा। इससे साधक को पता चल जाता है, कि यह दूसरे का संकल्प है। इस प्रकार साधक उससे बच कर निकल जाता है।

यह है साधकों का बरबादी से बचने का तरीका। फिर साधक ज्यों-ज्यों उन्नति करता जाता है, त्यों-त्यों बाहर उसकी आभा, उपलब्धि दृष्टि गोचर होने लगती है -

‘तहाँ जाइ देखी वन सोभा।

गुंजत चंचरीक मन लोभा॥’

नाना तरु फल फूल सुहाए।

खग मृग वृंद देखि मन भाए॥

वन की शोभा का आशय है, बाहर की आभा। साधक अन्दर-अन्दर उन्नति करता जा रहा है, उसकी मान्यता बढ़ती जा रही है। सुन्दर लगने लगा, मैग्नेट काम करने लगे, लोग उसके व्यक्तित्व से खिंचने लगे, तथा आकर्षित होकर साधक की सेवा हेतु आने लगे। जब साधक और गहराई में गया और प्रसुप्तहुआ। तो कारण शरीर के स्तर पर लंकिनी मिल जाएगी। यह आसक्ति रूपी लंका की जड़ यहाँ तक घुसी है। इसे यहाँ से निकालना पड़ेगा। कारण शरीर के अन्दर भी इसके अंश हैं। अब इस कारण शरीर की आसक्ति रूपी लंकिनी पर कंट्रोल करना है। यह आसक्ति अन्दर बहुत गहराई तक प्रवेश करती जाती है। साधक अपने वैराग्य के द्वारा आसक्ति से बचकर निकल जाता है।

गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग विसेषी॥

अति उतंग जलनिधि चहुंपासा। कनक कोट मनि रचित प्रकासा॥

गोस्वामी जी ने यह जो सोना शब्द लिया है, बहुत सोच समझ कर लिया है। सर्वोच्च स्तर की समझ या पदार्थ उन्हें जहां मिलता है वहाँ सोने का प्रयोग कर देते हैं। क्योंकि सोने का महत्व सबसे बड़ा है। साधक ने कितना डुबकी लगाया। स्थूल में प्रवेश कर, सूक्ष्म में प्रवेश कर गया। अब कारण शरीर में प्रवेश कर गया और उससे मूल कारण का पता लगा लिया। जब यह कारण शरीर की आसक्ति छूट जाय, तो फिर वह अलौकिक तत्व मिलता है। यह मुकाम वह है, जिसे कि साधक को पाना है। हमारे तुम्हारे अन्दर भी हनुमान ही तो काम करेगा। तो जब हम सूक्ष्म शरीर पार करने लगते हैं। तो नाना प्रकार के पूर्व परिचित लोग हैं, वे सोचते हैं हमारे विषय में उल्टा पुल्टी। तो वो जो उनके संकल्प हैं, और उन्हें हम नहीं समझ पाते, तो झट हम उनके शिकार हो जाते हैं। जिसके मन में बुरे संकल्पों का असर नहीं होता, वह हनुमान है। पूर्व के संस्कार भी अपना प्रभाव डालते हैं।

अच्छा वैराग्यवान साधक विषय को मन से हटा कर आगे निकल जाता है। किसी प्रकार की बुराई पास आ जाय तो उसका त्याग कर देना चाहिये। अब एक शरीर की साधना रह गई, जिसको कारण शरीर कहते हैं। तीन गुण, तीन अवस्थाओं से पार जाना है, और ध्यान में बैठकर क्रिया हो रही है। जैसे आकाश की तरफ हमें जाना है, और ये पदार्थ हमें घेर रहे हैं कि हम पदार्थों में लीन हो जायं। और आकाश में यदि हम पहुंच जायेंगे, तो वहां कोई पदार्थ है नहीं। आकाश को वायु सुखा नहीं

सकती, अग्नि जला नहीं सकती, अस्त्र-शस्त्र काट नहीं सकते। क्या काटेगा, कुछ है ही नहीं। इसलिये हमें ऐसे रहना है, आकाशवत् होना है। ऐसी शैली से अभ्यास करना है, कि तुम दुनिया में रहते हुये भी अलग रहोगे। पदार्थों में नहीं रहते। हम शरीर से अलग हैं। भगवान से प्रार्थना करो कि यह स्थान हमें दे दें। हम आकाशवत् हो जायें। तो इस शैली से हम सूक्ष्म शरीर से भी सकुशल निकल कर, अपनी साधना की युक्तियों के द्वारा माया से अलग हो जाते हैं।

अब कारण शरीर की ओर चलो। कारण शरीर सबका मूल कारण है। संसार कार्य है, कारण ईश्वर है। जैसे सोने के गहनों में कंगन और कर्ण फूल, हार इत्यादि गहने अनेक रूपों में कार्य हैं, और कारण सोना है। इसी प्रकार ईश्वर कारण है, और संसार कार्य है। ईश्वर सबसे बारीक या मालिक्कूल है, और वहां सबके संस्कार जमा हैं। जो हमने कमाई की है, इन राक्षसों को भर दिया है इन दुर्गुणों को, और सांसारिक विचार धारा, विषय की कल्पना, खाने की कल्पनायें, भोग करने की कल्पनायें, सुन्दरता की, कल्पनायें, धनी होने की-इन सब तरह की कल्पनाओं के बीज जमा हैं। तो जो मान का हरण करने वाली वृत्ति रूपी हनुमान है। ध्यान में वहां पहुंच जाती है। और उनको देख रही है, कि ये हैं बड़े भारी बलवान। तो जब वह आगे बढ़ता है, तो लंकिनी मिली। संसार में जो लव लगी है, वह है लंकनी। जब हम इसमें लव लगाये हैं, तभी ये बढ़ रहे हैं।

मसक समान रूप कपि धरी।

लंकहिं चलेउ सुमिरि नरहरी॥

नाम लंकिनी एक निसिचरी।

सो करि चलेसि मोहिं निन्दरी॥

सुरसा शरीर की आसक्ति। सिंहिका सूक्ष्म शरीर की आसक्ति और लंकिनी कारण शरीर की आसक्ति। तो वह सूक्ष्म से सूक्ष्म हो, तो जैसे का तैसा बनेगा तब काम चलेगा। इसलिये हनुमान ने बहुत बारीक रूप बनाया। स्थूल शरीर के स्तर की क्रियाएं सभी के समझ में आ जाती हैं। लेकिन मन के अन्दर की सूक्ष्म गतिविधियां सबकी समझ में नहीं आती। तो ये स्थूल की सुरसा और सूक्ष्म की सिंहिका तो जीत ली गयी। जो सबसे बारीक विषय की आसक्ति है, वह लंकिनी वहाँ लगी है, कारण शरीर में। तो इस ढंग से जब हनुमान बहुत बारीक बन कर आगे चले, तो उससे भेंट हुई। जब चित्त को पकड़ लेते हैं, तो वह कितनी बारीक और बलवान है, तो भी एक मुठिका में डगमगा गयी, और खून का बमन हुआ। तो यह लंकिनी वहाँ की

मूल कुंजी है। जब शुद्ध वैराग्य वाला साधक इसे मारेगा, तो समझ लो, विजातीय, पार्टी का सब राक्षसों का नाश होगा। यह शर्त है, पहिचान है।

“विकल होसि तैं कपि के मारे।

तब जानेसु निसिचर संहारे”।

यह इसे ब्रह्मा ने पहले ही वरदान दिया था। अब देखो किसी को जरा सी चोट लगती है, तो लोग अस्पताल ले जाते हैं। डाक्टर वैद्य के पास ले जाते हैं, और लंकनी की हड्डी-पसली, जबड़ा टूट गया, मुँह से खून की कै होने लगी, और उसे कोई अस्पताल नहीं ले गया। और उलटे वह खुश है।

दो.- तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।

तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग॥

वह लंकिनी वहां सतसंग कर रही है। अस्पताल तो कोई ले नहीं गया। तो भाई, इस तरह से यह बाहर की बात है, ऐसा तो हम मानते नहीं हैं। इसलिये यह अन्दर की बात है। कारण शरीर की बात है। जहाँ संकल्प ही संकल्प रहते हैं। जहां सजातीय-विजातीयों का युद्ध होता है। तो कंपोजीशन करने में बाहरी पदार्थों को ले लिया जाता है, प्रतीक रूप में। कथानक और घटनाओं के स्थूल चित्रों से, अन्दर की-मानस की सूक्ष्म बातों को महात्मा लोग, संसार के लोगों को समझाते हैं। क्योंकि स्थूल जगत के पदार्थों में रमण करने वाली बुद्धि से, मनोजगत की बारीक बातें पकड़ में नहीं आती। इसलिए यह बाहरी भी जरूरी है। अध्यात्म की दुनिया इस बाहर की दुनिया से थोड़ा अलग ढंग की है। उसमें प्रवेश पाने के लिए साधन-प्रक्रिया को समझना पड़ेगा और उस पर अमल करना पड़ेगा।

अति लघुरूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

मन्दिर मन्दिर प्रतिकर सोधा। देखे जहं तहं अगनित जोधा॥

अब हनुमान और छोटे रूप में हो गया। पहले मसक समान और अब अति लघुरूप। मतलब है कि अन्तर्जगत के रहस्यों को समझने के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म बनना पड़ता है। तीव्रतर वैराग्य लाना पड़ेगा। तब वहां के रहने-बसने वालों को, अन्दर के कोष्ठकों को अवयवों को देख सकता है। कहाँ रावण बैठा है? कहाँ विभीषण का घर है – यह सब देखना है, उसे समझना।

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहं भिन्न बनावा।।

दो.- रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाय।

नव तुलसिका वृंद तहं, देखि हरष कपिराय।।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।

वैराग्य रूपी हनुमान जब साधक के हृदय में बैठा, साधक जब ध्यान में बैठा, और राग के स्थान पर वैराग्य को धारण कर लिया मन में। फिर वह सक्रिय हो गया। ध्यान के माध्यम से अंतःकरण में प्रवेश कर गया। सुरसा ने उसे बहुत रोका। उससे छूटकर आगे गया, फिर सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है, तो सिंहिकाने रोका संकल्पों के द्वारा। उसे भी मारकर आगे, कारण शरीर में प्रवेश करने की स्थिति बन गई, तो वहाँ लंकिनी ने बहुत रोका। उसे भी हटाया, कारण में प्रवेश किया। वहाँ रावण को सोते देखा। वैराग्य सक्रिय रहेगा तो मोह रूपी रावण सुषुप्त रहता है वहाँ। अब आगे - वहाँ विभीषण से भेंट हो गई। जीवात्मा का स्वरूप विभीषण का है। तो जब साधक तीनों शरीरों के स्तर की साधना पूरी करके, त्रिगुणातीत अवस्था को प्राप्त हो जाता है। तीनों गुणों से परे हो जाता है। तब आत्मा से भेंट होती है। तो यह जीवात्मा रूपी विभीषण, इसी लंका में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि असुरों के बीच फंसा पड़ा है। परेशान है, लेकिन इनके आधीन है। इन्हीं को अपना भाई बंधु माने है। तब भी उसकी प्रवृत्ति भगवान की ओर बनी रहती है। जीवात्मा की प्रवृत्ति परमात्मा की ओर रहती ही है। वह कैसी भी परिस्थिति में रहे। जीवात्मा अंश है, परमात्मा अंशी है। वह अपने अंशी से मिलने के लिए स्वभावतः प्रयत्नशील रहता है। यह जीवात्मा, परमात्मा का स्वरूप ही है, लेकिन खुद अपनी ही माया में फंस गया है। स्वरूप से तो वह निर्लेप ही है।

‘ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।

सो माया बस पर्यो गोसाई। बंध्यो कीट मर्कट की नाई।।’

तो इस जीवात्मा रूप विभीषण से भेंट हो जाय, उससे जान-पहिचान हो जाय, तो फिर वह सब जानता है- सब युक्तियां वहां से मिल जाती हैं।

दो.- तब हनुमंत कही सब, राम कथा निजनाम।

सुनत जुगल तन मुलकमन, मगन, सुमिरि गुनग्राम।।

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन महं जीभ विचारी।।

काम क्रोध आदि विजातीय समूह के बीच यह दशा है, इस जीवात्मा की। इस काया रूपी किले में विकारों से घिरा हुआ पड़ा है। वैराग्य रूपी हनुमान के आने से,

वह अपनी इस दुर्दशा का अनुभव करता है। वैराग्य भाव को अपनाता है। उसे प्रश्रय देता है। जीवात्मा है विभीषण, जो आसक्ति रूपी लंका में मोह रूप रावण के आधीन है। तो यह जो हनुमान और विभीषण की भेंट का प्रसंग है, यह साधक के अन्तर्जगत (मानस) की बहुत बड़ी घटना है। जब किसी प्रबल वैराग्यवान साधक को अन्दर ही अन्दर जीवात्मा रूप विभीषण का मार्गदर्शन मिलने लगता है, अनुभूतियां मिलने लगती हैं, तब वह अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ जाता है। यह साधना की बड़ी उच्च अवस्था है। पांचवीं भूमिका की बात है।

पुनि सबकथा विभीषण कही। जेहि विधि जनकसुता तहं रही॥

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउं जानकी माता॥

जुगुति विभीषण सकल सुनाई। चलेउ पवन सुत विदा कराई॥

करि सोइ रूप गयउ पुनितहंवां। वन असोक सीता रह जहंवां॥

तो अगर साधक का वैराग्य, काम कर गया, और भजन-साधन करने की बात मन में बैठ गई, तो फिर मन को लगाते-लगाते, धीरे-धीरे विषयों से मन को हटाते-हटाते, बड़ी मुश्किल से भगवान में लगता है। मन को चिंतवनों का नशा रहता है। रुकता ही नहीं। तो इसमें यह वैराग्य ही काम करेगा। मन के अन्दर जो वैराग्य है, उसे इतना सूक्ष्म बनावे, कि वह किसी की पकड़ में न आवे।

सूक्ष्म नहीं करेंगे तो किसी के चिंतवन, उसे पकड़ लेंगे। जब जीवात्मा रूपी विभीषण से भेंट किया और बताया, कि मुझे भगवान की शक्ति-सीता का अनुसंधान करना है। परमात्मा की भक्ति करना है। मेरा मार्गदर्शन करो। तो फिर -

‘जुगुति विभीषण सकल सुनाई।’

इस तरह से अगर साधक की भेंट अंदर मार्गदर्शक से हो जाय, तब सीता का पता लगे। विभीषण (जीवात्मा) से भेंट तो कर नहीं पाते लोग। भोजन से भेंट होती है। कपड़ों से भेंट होती है, काम से भेंट होती है। हाँ कुछ सेवा कार्य करता रहेगा, तो विषय-चिंतवन से बचा रहेगा। कहते हैं कि -

आलसी का सर। शैतान का घर॥

इसलिए भजन के साथ सेवा कार्य भी करना चाहिए। खाली रहोगे तो ये काम-क्रोध शैतान तो मौका ताके बैठे ही हैं। कहा जाता है कि -

‘बकरी पाती खात है, ताहि नचावै काम।

हलुवा पूड़ी खात जे, उनके रक्षक राम॥’

आजकल आदमी दूध मलाई, मिनिरल्स, प्रोटीन, विटामिन और क्या-क्या खाता है। उनका मन कैसे विषय में न जाएगा? जबकि भेड़-बकरी, जो पेड़ों की पत्ती खाकर पेट भरते हैं-उन्हें भी काम का आवेश रुकाए नहीं रुकता। तो ऐसी स्थिति में, मन को रोकने का यही एक उपाय है, कि भगवान में अनुरागपैदा हो जाय। उधर ही मन लगा रहे। हमारा मन बाहरी विषयों में न जाय। सुरति भगवान में ही लगी रहे। उसी का नशा चढ़ा रहे। एक शुरुआत छाया रहे-कि हमारा कर्तव्य है, भगवान का भजन करना। हमारे अंदर जो विकार पैदा हो गए हैं, इन्हें समाप्त करना-यही हमारा धर्म है। इसे चाहे भजन-साधन कहो, चाहे कर्तव्य कहो, चाहे युद्ध कहो, एक ही बात है। तो हमारा ध्येय यह बन जाना चाहिए, कि हमारा मन विकारों से हटे, और भगवान में लग जाय।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम चरन रति निपुन विवेका।।

सबलौं बोलि सुनाएसि सपना। सीतहिं सेइकरहु हित अपना।।

सपने बानर लंका जारी। जातु धान सेना सब मारी।।

अगर पूर्व के पुण्यों की पूंजी है, तो सद्गुरु से भेंट हो जाती है। साधन का रास्ता मिल जाता है। सद्गुरु का सहारा जिसे मिल जाता है, उसका बेड़ा पार लग जाता है।

त्रिजटा के द्वारा गोस्वामी जी ने उन सब बातों का संकेत दे दिया है जो अब आगे होने वाली हैं। उसने बताया कि सपने में एक बंदर ने लंका को जला दिया। राक्षस सेना मारी गई। रावण गंधे में बैठा दक्षिण दिशा को जा रहा है, जो उसकी मृत्यु का सूचक है। विभीषण लंका का राजा बन गया है। और यह स्वप्न कुछ दिनों में ही सत्य होकर सामने आएगा। तो यह सब बातें ऐसी हैं कि साधक जब भजन-साधन करता है तो उसे इष्ट की ओर से संकेत मिलते हैं। अंग फड़कन से, वाणी से, स्वप्नों के द्वारा, और भी कई तरीके से इष्ट का सद्गुरु का मार्गदर्शन मिलता है। इन संकेतों के अनुसार चलकर कुशल साधक अन्तर्जगत की साधना में आगे बढ़ता जाता है।

बंदर सीता की खोज में परेशान थे। एक विवर देखकर प्यास बुझाने की गरज से उसमें गए अन्दर। उन्हें वहाँ मार्गदर्शन मिल गया-मदद मिल गई, उस तपस्विनी के रूप में। तो साधक जब साधना की गहराई में पहुंच जाता है, तो उसे इष्टदेव किसी न किसी रूप में, मार्गदर्शन करने लगते हैं। और परमात्मा अपनी क्षमता से, साधक को राइज कर देता है। सम्पाती मिल जाता है। शक्ति के अनुसंधान का रहस्य वहाँ

साधक पा जाता है। अब देखिए, यहाँ भी त्रिजटा के रूप में इष्ट की मदद पा गया। इस तरह स्टेप बाई स्टेप, साधक प्रगति करता जाता है। तो हम प्रसंग से हटकर जो चारों तरफ की बातें बताने लगते हैं, वह इसलिए कि तुम अपने अन्तःकरण की रूपरेखा और साधन प्रक्रिया को अच्छी तरह से समझ सको।

इसलिए कि तुम लोगों के अन्दर यह बैठ जाय, कि इस रामायण को पढ़ने का सही लाभ तभी मिलेगा—जब हम इसे अपने में एडजस्ट कर लें। हृदयंगम करें, इसे अपने अन्दर ढाल लें। बाहर से मन को समेट कर अन्तर्मुखी बनाएं। अध्यात्म विषय अन्दर का है, यह बात अच्छी तरह से समझ में आ जाना चाहिए।

इसलिए गौस्वामी जी ने सोचा कि इसका हम भरपूर प्रयास करके चित्रण कर दें। इस रामचरित मानस में उन्होंने इसी-अंतःकरण (मानस) की रीति नीति को कथा के माध्यम से लिखा है। कैसे यह काम करता है? कैसे समाज है नहीं, और बन जाती है? कैसे हमको इससे लाभ हो सकता है? और कैसे हमविकारों के द्वारा अपने अकल्याण की ओर चले जाते हैं? इस तरह से दोनों ओर इसकी प्रवृत्ति होती है, एक संसार उन्मुख और एक ईश्वर उन्मुख। इसी का चित्रण जैसा उनसे बन सका है, उन्होंने किया है। और इसका नाम रखा है रामचरित मानस। राम जो सबमें रमा हुआ है। जो सर्वत्र है—कैसे उसे पाकर लोग, उसी का रूप बन जाते हैं? कैसे उसे न पाकर यह दुनिया बना लेते हैं। रावण जैसी दुनिया बन जाती है। कहीं उसे पाकर अयोध्या जैसी दुनिया बन जाती है। शान्ति मिलने लगती है। सब प्रकार की संसारी कामनाओं से भर जाते हैं जब हम, तब हमारे अन्दर लंका तैयार हो जाती है। विषय से लव लगाने का नाम लंका है। जब कि इस काण्ड में लंका की कथा है जिसमें हत्या, मारकाट, विध्वंस, शोक संताप यही सब है इसमें, और तब भी सुन्दरकाण्ड को सबसे अच्छा माना जाता है। बाहर की कथा के हिसाब से इसमें सुन्दरता नहीं देखने में आती। लेकिन यदि अन्तर्जगत में इसके प्रसंगों को घटाते चलें, तो हम देखेंगे कि साधना की उच्च से उच्च अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण इसके प्रसंगों में आ जाता है। शायद है कि गोस्वामी जी ने इसी आशय से, इसको सुन्दरकाण्ड कहा है।

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥

सब रजनीचर कपि संहारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥

पुनि पठए तेहि अछ कुमारा। चला संग लैसुभट अपारा॥

आवत देखि विटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥

तो अब जब मार्ग दर्शन मिल गया तो उसी के अनुसार काम होने लगा। सीता से आज्ञा लेकर हनुमान फल खाने के बहाने बाग उजाड़ने लगे। वहां जो राक्षस थे, रखवाले बगैरह, उन्हें मारना शुरू किया हनुमान ने। रावण को पता चला तो उसने तमाम राक्षसों को भेजा। उन सबको मार दिया हनुमान ने। तब फिर रावण का छोटा लड़का अक्षय कुमार आया, सेना लेकर।

यह सब मारकाट शुरू हो गई। तो ये हमारे जितने धर्म ग्रंथ हैं रामायण-महाभारत वगैरह, इनमें ऐसी हिंसा की बातें भरी पड़ी हैं। हिन्दू धर्म तो अहिंसा को मानता है। तो फिर हिंसा-मारकाट, यह सब क्यों लिखना चाहिए इनमें? क्या यह उचित लगता है? तो असल बात यह है, कि ये बातें बाहर की हैं नहीं। यह लड़ाई-झगड़ा मारकाट साधक के अन्तर्जगत की बात है। साधक के अन्तःकरण में जब वैराग्यभाव बढ़ जाता है, तब विजातीय पार्टी जो राक्षसों की है - जितने दुर्गुण अन्दर भरे पड़े हैं - वे सब हटने लग जाते हैं। विकारों को समाप्त करता है यह वैराग्य। तो यह लड़ाई, यह मारकाट किसी वैराग्यवान साधक के अन्दर साधना चल रही है। विकारों को नहीं मिटाएंगे, सद्गुणों को नहीं बढ़ाएंगे, तो हम साधना क्या करेंगे? यही साधना है, जिसे बाहर की भाषा में युद्ध कहा जाता है। हनुमान वैराग्य है। राक्षस हैं अन्दर के दुर्गुण। जिसके अन्दर प्रबल वैराग्य जाग्रत हो जाता है, उसके अन्दर से बुराइयों का सफाया होने लगता है। यही धर्म का लक्षण है। वहाँ कहाँ मार-काट और हिंसा हुई? इसलिए इन प्रसंगों को सही तरीके से समझते चलो।

अब अक्षय कुमार आ गया। अक्षय कहते हैं इच्छा को। साधक के मन में अनेक संसारी इच्छाएं आती रहती हैं। साधन-भजन के रास्ते में ये इच्छाएं बहुत बड़ी बाधा बन जाती हैं। साधक वही है जो अपनी इच्छाओं पर कंट्रोल कर ले। अनपेक्ष हो जाय। इच्छा से रहित होना, कामना से रहित होना, यह बहुत बड़ी बात है इस मार्ग में। इच्छा के रहते साधना में प्रगति हो नहीं सकती। कहते हैं - 'इच्छइ कायाइच्छइ माया इच्छइ जग उपजाया।' तो इच्छा का दमन वैराग्य से ही होता है।

राजा भरथरी को जब गुरु गोरखनाथ की प्रेरणा से वैराग्य हुआ, तो वह राज-पाट छोड़कर जंगल चले गए। उज्जैन के पास, वहीं छिप्रा नदी के किनारे एक गुफा में बैठ गए। भजन करते रहे। एक दिन अनायास उनके मन में जलेबी खाने की इच्छा हुई। वहाँ जंगल में जलेबी तो धरी नहीं थी। जलेबी खाने की इच्छा को दबाते रहे। अपने मन को समझाते रहे। लेकिन मन में बार-बार जलेबी की इच्छा आए। जलेबी का स्वाद, उसकी सुगंध मन में आ जाय। मन को गुरु के ध्यान में

लगावें-वह भागकर जलेबी में चला जाय। जप में लगावें तो राम-राम के बजाय मन जलेबी-जलेबी जपे। तो थक-हारकर सोचे कि चलो कहीं से जलेबी का प्रबंध किया जाय। निकले जंगल से, तो एक जगह सड़क में कुछ काम हो रहा था। बहुत से मजदूर थे। उन्हीं में शामिल हो गए। दिनभर मिट्टी की डलिया ढोए। शाम को जो पैसे मिले, बाजार से जलेबी खरीदी और लेकर अपनी कुटिया (गुफा) में आए। दिन भर के भूखे-प्यासे, जलेबी लेकर बैठे छिप्रा के किनारे। उसी समय आकाश वाणी हुई। अन्दर से इष्ट की वाणी मिली, कि खाना नहीं। इस मन का कहना, एक बार कर दोगे तो बार-बार इच्छा करेगा, तुम्हें नरक में ले जायगा। उधर भूख के मारे जान जा रही थी, मन जलेबी के लिए टूटा पड़ रहा था। मुंह में पानी आ रहा था- जलेबी सामने देखकर। पर खा तो सकते नहीं थे- इष्ट का आदेश हो गया, गुरु-भगवान की वाणी हो गई थी। तो अब भरथरी ने एक कतरा जलेबी का उठाया, मुंह के पास तक ले गए और फिर कुछ देर तक मुंह के पास रोके रहे। बोले-ले मेरे मन! खा जलेबी। और बस, हाथ से उस कतरे को छोड़ दिया। जलेबी का वह कतरा छिप्रा की धारा में चला गया। इस तरह से एक-एक करके सारी जलेबी नदी में गिराते गए। मन को ललचाते रहे। जब अंतिम कतरा उठाया, तो देखा कि एक लड़की सामने खड़ी है, हाथ फैलाकर जलेबी का वह अंतिम कतरा मांग रही है। एकाएक प्रकट हुई उस लड़की को देखकर भरथरी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा उस लड़की से, कि तुम कौन हो? तब उसने बताया कि मैं तुम्हारी इच्छा हूँ। मुझे यह कतरा देकर तृप्त कर दो। फिर मैं कभी अब तुम्हारे पास नहीं आऊँगी। तुम्हारे यहां मेरे लिए अब जगह नहीं रह गई।

तो देखो, जो वैराग्यवान साधक हैं, सच्चे गुरु से ज्ञान पाए हुए हैं, वे अपनी इच्छा को जीत लेते हैं। यह इच्छा रूप अक्षय कुमार, मोह रूपी रावण की संतान है। हनुमान इसे मारता है। हनुमान कोई बंदर नहीं है। साधक के अन्दर सजातीय पार्टी का महान योद्धा है। ज्ञान की पार्टी का, राम की पार्टी का शक्तिशाली तत्व है, यह वैराग्य।

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥

मारेसि जनि सुत बांधेसु ताही। देखिअ कपिहिं कहां कर आही॥

चला इन्द्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।

कपि देखा दारुण भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु थावा॥

साधना करने वाला साधक जब अन्तर्मुख होकर अपने अन्दर की गतिविधि को देखने में सक्षम होता है, तो उसका जो वैराग्य है वह हनुमान का रूप लेकर इधर डटा हुआ दिखाई देता है। और वहीं अन्तःकरण में उधर मोह रूपी रावण पहले से अपनी गद्दी लगाए दल-बल के साथ बैठा है। मोह मय विजातीय संकल्प उठते हैं लेकिन उसके अन्दर प्रखर वैराग्य युक्त संकल्प, उन्हें नष्ट कर देते हैं। वही है, जो मन के अन्दर प्रवेश करके-ध्यान रूप में ध्याता के अन्दर प्रवेश करके-जब शक्ति रूपी सीता से साक्षात्कार कर लेता है, तो अब वह इन विरोधियों की सब स्थिति-परिस्थिति को समझ लेना चाहता है। उनके बल पौरुष और रीति-नीति की गहराई की पूरी थाह लेना चाहता है। इसलिए उसने यह सब कौतुक रच दिया। अब आ गया मेघनाद। यह रावण का बड़ा लड़का, महान बलवान, इन्द्र को जीत लेने वाला- हनुमान का उससे सामना हो गया। मेघनाद कामदेव का रूप है। साधक के अन्दर जो विषय के संकल्प हैं - काम का आवेश, वह है मेघनाद। काम का आवेश बड़ा प्रबल होता है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इसके प्रभाव में आ जाते हैं। काम, क्रोध और लोभ, ये सब विजातीय पार्टी के बहुत बड़े-बड़े योद्धा हैं। इन्हें जीत पानाहंसी खेल नहीं है।

‘तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।

मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिष महं छेभ।।’

इस तरह से अब साधक के अन्तःकरण में वैराग्य रूप हनुमान और काम रूपी मेघनाद की लड़ाई शुरू हुई। किसी तरह से इच्छा रूप अक्षय को मारा तो अब काम का प्रसार हो गया। साधक के मन के अन्दर जब वैराग्य युक्त विचार छा जाते हैं, तो मानो हनुमान का प्रहार हुआ, और जब काम का आवेश आया तो समझो मेघनाद का प्रहार हुआ। तो ये दोनों तरह के संकल्पों का संघर्ष अन्दर चलता है। वैराग्य की भावना, काम भावना को दबाती है, तो कभी काम का आवेश, वैराग्य भाव को दबा लेता है। यह दोनों प्रकार के विचारों की उठापटक साधक के मानस में चलती है।

दो.- ब्रह्म अस्त्र तेहि सांधा, कपिमन कीन्ह विचार।

जो न ब्रह्म सर मानउं, महिमा मिटे अपार।।

वैराग्य अगर है साधक में तो किसी न किसी तरह से हर बाधा को पार कर लेगा। काम रूपी मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र में बांध लिया तो भी वैराग्य रूपी हनुमान को ही अन्त में सफलता मिली।

वैराग्यवान साधक को अपने अन्दर की इन खराबियों को देखना चाहिए इस काया रूपी किले में आसक्ति रूपी लंका में जो घुसी हुई हैं। कि इनमें कैसी क्षमता

हैं कैसी इनकी क्रियाएं होती हैं, तो वह (हनुमान) स्वेच्छा से बंध गया। तो वैराग्य को कोई भय तो हो नहीं सकता। वह कोई बन्दर तो है नहीं। वह तो सूक्ष्म भाव है साधक के मन का। साधक अपने मन के अन्दर की स्थिति का निरीक्षण-परीक्षण करता रहता है, कि मेरे में जो ज्ञान, वैराग्य, विवेक आदि सद्गुण हैं, उनकी तुलना में इन काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों की क्षमता कितनी क्या है। हे भगवान! मैंने इतना त्याग किया क्या अभी मुझमें इन बुराइयों का पलड़ा भारी पड़ रहा है? अभी क्या सद्गुणों की क्षमता मुझमें इतनी कम है कि मैं इन दुष्टों से जीत नहीं सकता हूँ? ये राक्षस मेरे मन से हट क्यों नहीं रहे हैं। ऐसे यह सब देखा समझा जाता है। और पहले इच्छा रूपी अक्षय कुमार को वैराग्य के द्वारा मार दिया जाता है। फिर आसक्ति रूपी लंका को यही वैराग्य जला डालता है। और काम, क्रोध आदि ये बड़े-बड़े विकार इतनी जल्दी नहीं मरते।

ये सब विकार हमारे अन्दर बैठे हैं और हमारी क्षमता को हमारी शक्ति को भगवान में नहीं लगने देते हैं। उस शक्ति रूपी सीता को चुराकर अपने कब्जे में रख लिए हैं।

तो साधक के हृदय में जब वैराग्य आ जायगा तो उसकी साधना में गति आ जाती है। संसार रूपी समुद्र को एक छलांग में लांघ जाता है। इच्छा (अक्षय) को खतम कर देता है। आसक्ति (लंका) को जला डालता है और शक्ति (सीता) से साक्षात्कार कर लेता है। विजातीय संकल्पों पर हावी हो जाता है। और अगर रामायण की कथा को नाटक के दृश्यों की तरह लेंगे तो लंका को बाहर देखेंगे, दस शिर के रावण की कल्पना करेंगे, मन में एक चित्र खड़ा हो गया। तो यह जो पढ़ते-सुनते हमारे मन-मस्तिष्क में बाहर के दृश्यों का सेंस, (कांसेप्ट) दृढ़ हो गया है उसे धीरे-धीरे गलाना पड़ेगा। अन्दर से इसका कम्पोजीशन करना पड़ेगा तब फिर रामायण को हम अपने लिए कल्याण की चीज बना पाएंगे। अन्यथा-

तरु कोटर महं बसैविहंग तरु काटिय मरै न जैसे।

साधन करिय विचारहीन मन शुद्ध होय नहिं तैसे।

हनुमान ने ब्रह्मास्त्र के सामने समर्पण कर दिया। समर्पण एक बहुत बड़ी युक्ति है। सुरसा से जब पार नहीं पा रहे थे - किसी तरह से, तो वहां भी इसी युक्ति से काम लिया था। अब यहाँ भी समर्पण हो गया, तो बांधकर ले गया रावण के पास। तो वहाँ कहीं रावण राजा का दरबार नहीं लगा था। और न हनुमान कोई ऐसा बंदर है - जिसे बांधकर ले गया। यह सब अन्तर्जगत की साधना का चित्रण किया गया

है। अगर कोई बाहरी राजा होता और उसका छोटा लड़का मर गया था, तो क्या वह शोक न मनाता? क्या गोस्वामी जी ने कहीं लिखा है कि रावण ने शोक मनाया? तो लड़का वहां हो, तब तो शोक करे। वह तो सूक्ष्म जगत की बातें हैं। ब्रह्मास्त्र है प्रकृति की नियमावली। जिसे ईश्वरीय विधान भी कहते हैं। उसमें तो बंधना ही है। मेघनाद के ब्रह्मास्त्र संधान का अर्थ है कि काम का सर्वत्र व्यापक रूप में प्रभाव हो गया। साधक के अन्दर स्थूल, सूक्ष्म कारण तीनों शरीरों में अर्थात् तीनों लोकों में काम ही काम का आवेश हो गया। अब अगर हनुमान उस ब्रह्मास्त्र के प्रभाव में नहीं आते तो उसके प्रभाव की व्यापकता खण्डित होती है – यह नियमावली जो ईश्वर की प्रकृति की बनी चली आ रही है वह खंडित होती है। इसलिए हनुमान ब्रह्मास्त्र के सामने नतमस्तक हुए। फिर उन्हें यह भी पता लगाना था कि इस काम का मूल कहां से है। जहां से यह अति प्रबल कामादि विकार मदद लेते हैं। उस मोह-रावण का भी सब भेद देना था – इसलिए स्वेच्छा से बंध गए। वैराग्य में वह क्षमता है कि काम के प्रभाव से बचा सकता है, लेकिन हनुमान को वहाँ राम काज के लिए जाना ही था – रावण के दरबार में – उसका सब रहस्य लेकर राम को बताना था – लंका जलाना था, असुरों को आतंकित करना था। इस तरह से राम काज के लिए बंधे और उससे क्षमता मिली। शक्ति होते हुए क्षमा करने से क्षमता आती है। साधक की ताकत बढ़ जाती है।

तो साधक अपना काम बनाने के लिए स्वेच्छा से बंध जाता है, प्रकृति की नियमावली में। जब लेगया मेघनाद, तो वहां रावण का दरबार देखा हनुमान ने। बड़े-बड़े दिग्पाल, देवता सब उसके सामने नतमस्तक होकर हाथ जोड़े खड़े हैं। तो जब वैराग्यवान साधक अपने अन्दर प्रवेश करके भीतर का जायजा लेता है, तो देखता है कि मन और इन्द्रियों में सब तरफ मोह का प्रभाव है। इस मोह रूपी रावण का आतंक छाया है हर तरफ। उसी की जय जयकार हो रही है। विजातीयों का पूरा दल-बल वहां जमा हुआ है। देवता इन्द्रियों में निवास करते हैं – इन सब पर उसका प्रभाव छाया है।

दस मुख सभा दीख कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥

कर जोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकत सकल सभीता॥

देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महं गरुड़ असंका॥

इस तरह साधना की एक अवस्था में – जब हमारा वैराग्यभाव सूक्ष्म होकर काम करने लगा, तो अन्दर की बारीकियां पकड़ में आती हैं। आसक्ति की लंका में मोह

का ही बोलबाला रहता है। लेकिन तीव्रवैराग्य वाला साधक इससे घबड़ाता नहीं है। वह अपने काम में लगा रहेगा। ईश्वरीय कर्तव्य से हटेगा नहीं। चाहे उसे बंधना पड़े, चाहे अपमान सहना पड़े, चाहे लोग उसका उपहास करें, चाहे जो करना पड़े-वह हट नहीं सकता। उसकी दृष्टि अपने लक्ष्य से हटती नहीं। देखो जब रावण ने पूछा हनुमान से, कि तुमने हमारे लोगों को-तमाम राक्षसों को क्यों मारा? क्या तुम्हें मरने का भय नहीं है? क्या तुमने मेरा नाम नहीं सुन रखा है, जो ऐसी ठिठाई किया तुमने? तो देखो, हनुमान ने वहां क्या कहा? उसने कहा कि मैं उस भगवान का दूत हूँ जो सर्व शक्तिमान है। उसी की ताकत से तुम भी ताकतवर बने हो और अब अहंकार वश इसे अपनी प्रभुताई मानते हो।

दो.- जाके बल लवलेख ते, जितेहु चराचर झारि।

तासु दूत मैं जाकर, हरि आनेहु प्रिय नारि॥

तो भाई, अगर हम, तुम कोई भी हो, जो भगवान को भुलाकर यह मानलेता है कि यह सब मैंने किया है, यह सब मेरा है। मेरा वैभव, मेरा बल, मेरा लड़का, मेरा नाती, मेरा यह, मेरा वह-ऐसा मान लेता है-तो समझो वह रावण का ही काम करता है। यह मैं-मेरा ही मोह है। यह रावण जब जिसके अन्दर बैठ जाता है, तो उसका अन्तःकरण लंका बन जाता है। फिर वहां अनेक राक्षस रूपी दुर्गुणों का निवास हो जाता है।

‘लंका निशिचर निकर निवासा।’

और अगर हनुमान की तरह मानकर चले कि यह सब भगवान का है। मेरा कुछ नहीं है। मैं भी भगवान का हूँ, उसी का सेवक हूँ। उसी की शक्ति मेरे अन्दर से काम कर रही है। मेरा बल-बुद्धि जो भी है, उसी परमात्मा का है। उसी की सेवा के लिए है। जो ऐसा मानता है, उसका अन्तःकरण अवध बन जाता है। जब ऐसा ज्ञान मन में आता है और दसों इन्द्रियाँ ईश्वर के अर्थ में काम करने लग जाती हैं, तो यह दशरथ वहाँ का राजा होता है। भक्ति रूपी कौशिल्या को जीवन संगिनी बना लिया तो फिर वहाँ भगवान का प्रादुर्भाव हो जाता है।

‘सजातीय-विजातीय दोनों एक ही हैं, एक ही परमात्मा से दोनों ताकत लेते हैं। उसी जीवात्मा के दोनों अंग हैं। इसमें ऐसा नियम है कि आदमी का ‘मैं’ जब खड़ा हो जाता है तो वह अच्छा काम करे या बुरा काम करे - मैं करता हूँ, मेरा है - यह भाव अगर है तो वह विजातीय समूह में आएगा। और अगर ‘मैं’ भाव न रहे, ऐसा रहे कि मैं और मेरा जो भी है वह सब भगवान का है, वह सजातीय में रहेगा

- बस इतना ही फर्क है। इसी से राक्षस - और देवता बनते हैं। सुख-दुःख और शान्ति अशान्ति का भी मूल सिद्धान्त इतना ही है। इसलिए जब तक मैपन न मिटे तब तक ईश्वर की शरण में रहने से कल्याण है, और मैं न रह जायगा तो फिर ईश्वर ही ईश्वर हो जायगा। कबीर कहते हैं -

‘जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।’

इसलिए जो भजन में लगा हुआ साधक है भगवान को पाना चाहता है, उसे हनुमान को अपने में बैठा लेना चाहिए। हनुमान का मतलब है, जो मान का हनन करे। अभिमान से रहित हो जाना, अहंकार न रह जाय, मैं न रह जाय। कहते हैं हनुमान को अपने बल का स्मरण नहीं रहता था। इसका मतलब यह निकलता है कि भगवान पर निर्भरता का भाव जब साधक के अन्दर परिपक्व हो जाता है, जब अहंता-ममता का त्याग हो जाता है, ऐसा वैराग्य आता है तब हनुमान वहां प्रतिष्ठित हो जाता है। जो ऐसा कर ले, उसे कहा जाएगा हनुमान का पुजारी। उसे कहा जाएगा राम का भक्त। और यह जो बाहर-बाहर की पूजा है-यह सब समाजिक तौर तरीके की बातें हैं। साधना व्यक्तिगत चीज है, अपने अन्दर की प्रक्रिया है।

जिन्ह मोहिंमारा ते मैं मारे। तेहि पर बांधेउ तनय तुम्हारे॥

मोहि न कछु बांधे कइ लाजा। कीन्ह चहउं निज प्रभुकर काजा॥

विनती करउं जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥

जो साधक ईश्वरीय कर्तव्य में लगा हुआ है, भजन में लगा है, उसका जो ध्येय है, जो लक्ष्य है, उसी में उसकी दृष्टि रहती है। बंधना पड़े, चाहे मरना पड़े-कोई मतलब नहीं। हनुमान को तो राम-काज करना है। इसलिए, बंधन में आने का कोई गम नहीं। अपने रास्ते से हटना नहीं है। अनुकूलता आए, चाहे प्रतिकूलता आए-साधक को ईश्वरीय कर्तव्य के लिए हर परिस्थिति में खुश रहना चाहिए। निर्भय रहना चाहिए। विनम्र रहना चाहिए। विश्वास बना रहे। डांवाडोल न हो जाय। तो भगवान की मदद मिल जाती है। उपाय निकल आता है। प्रगति हो जाती है। तो हनुमान और रावण ये परस्पर विरोधी विचार हैं-साधक के अन्दर। एक सजातीय विचार है, दूसरा विजातीय विचार है। दोनों का संवाद चल रहा है। यह खींचतान मची है अन्दर ही अन्दर। जब हम ईश्वर को सब कुछ मान लेते हैं, मन बुद्धि में ईश्वरीय मान्यता का भाव आता है तब समझो हनुमान खड़ा होकर बोलने लगा। और वहीं उन भावनाओं को ढकेलकर, अगर मैं हूँ सब करने वाला-ऐसा आए तो यह मानो रावण डाटने लगा हनुमान को। ऐसी यह कहानी है। जब भजन करते-करते साधक

आगे बढ़ जाता है। सूक्ष्म स्तर की साधना में प्रवेश पा जाता है, तो बारीक बातें समझ में आने लगती हैं।

जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रवै मूढ़ सोइ रचना॥

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूंछ कीन्ह कपि खेला॥

कौतुक कहं आए पुरबासी। मारहिं लात करहिं बहु हांसी॥

हनुमान की बातों से रावण खिसिया गया था। तो बोला कि मार दो इसे। उसी समय विभीषण ने नीति की बात कही, कि दूत को मारना नहीं चाहिए। तो फिर रावण ने कहा कि इसकी पूंछ में आग लगा दो। तो यह सब बाहर का नाटक नहीं है।

हनुमान कहते हैं विरक्ति को। यह वृत्ति जब अन्दर पहुंच जाय। और मोह कहते हैं रावण को। शरीर के अंदर जितने हारमोस हैं- जितनी इंद्रियाँ हैं, उनमें एक-एक देवता बैठा है। सब उसकी हाजिरी में रहते हैं। शरीरों पर कब्जा कर लिया है, मोहपी रावण ने। और आत्मा का कहना वह मानता नहीं। आत्मा है विभीषण। वह परवश हो गया है। पड़ा है, एक मंदिर में -

“परवश जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥

यह आत्मा, जब सबकी एक मालूम पड़ने लगे, ऐसे हम हो जायं। यह हमें महसूस हो जाय कि अब हम सब में एक हो गए, तो ईश्वर की प्राप्ति होती है। और जब तक अलग-अलग है, तब तक वशीभूत रहना पड़ेगा। मोह-रावण के आधीन रहना पड़ेगा।

तो यह जो लंकादहन का प्रसंग है-हमें अपने में लेना है। हमारी सुरति में वैराग्य का भाव छा जाय, यही हनुमान है। आत्मा की शक्ति है-सीता। जो उसी में रहती है-विभीषण की जानकारी में है। वहां पर वह ताकत बैठी है। वे लोग (विजातीय), उसका उपभोग कर नहीं सकते। ये पदार्थ जितने हैं, इनको भोगने वाले जो हैं, वे ईश्वर को जान नहीं सकते। वह ईश्वर का दूत है-वैराग्य। जो राग का नाश करने में लगा हुआ है। अंतःकरण की विरक्ति, आसक्ति को मिटाने में लगी है। लंका को जलाने में लगा है हनुमान। तो आसक्ति लंका है, वैराग्य है हनुमान।

अब इसमें पूंछ कहते हैं सूक्ष्मज्ञ को। जब यह बढ़ गई तो फिर-बाढ़ी पूंछ कीन्ह कपि खेला। तब अनुराग अग्नि से आसक्ति रूपी लंका को जला दिया। निबुकि चढेउ कपि कनक अटारी - ब्रह्मास्त्र से छूटने के लिए हनुमान ने सूक्ष्म रूप बनाया था-इसका यही आशय है-वैराग्यवान जो साधक होते हैं, वे महात्मा, शरीरासक्ति से

हट जाते हैं- एकाहार, उपवास आदि से क्षीण हो जाते हैं-इस तरह से वैराग्य ही शरीर की आसक्ति को जला डालता है।

जारा नगर निमिष एक माहीं। एक विभीषण कर गृह नाही॥

ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥

उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मंझारी॥

विभीषण का घर नहीं जला। तो विभीषण तो बहुत बारीक चीज़ है। उसमें क्या जलेगा। वह कहने में आता नहीं। कवियों ने अपनी शैली से बना लिया है। विभीषण तो जीवात्मा है। आत्मा तो अकल है, अनीह है, अनंत है, एकरस है। उसको आग जला नहीं सकती-हवा सुखा नहीं सकती। यह आकाशवत् है। आकाश से भी कहीं ज्यादा बारीक है। आकाश से बारीक महत्तत्व, महत्तत्व से बारीक प्रकृति, प्रकृति से बारीक आत्मा है। उसका नाम है विभीषण। वह है ताकत का पुंज। लेकिन माया मोह के आधीन हो गया तो दीन-हीन होकर रह गया है। अब उसी को इन राक्षसों के बीच से निकाल कर ले आने के लिए ही तो यह सब साधना चल रही है। साधक का वैराग्य तीव्रतर होकर काम कर रहा है, तो अब उसके निकलने में देर नहीं है। इन सब शरीरों के अन्दर है-वह आत्मा, वह विभीषण है। वह अजर अमर है। कैसे जलेगा? शरीर मर मिट जाते हैं-वह नहीं मरता। वह परमात्मा में लीन रहता है। और वह चेतन इस जड़ के साथ काम करता है। जैसे हारमोनियम बाजा होता है। उसमें हवा के लिए पर्दा बनाते हैं-अंदर उसमें छेद कर देते हैं। हवा उन छेदों से निकलती है, तो आवाज़ होती है। ऐसे यह बना हुआ है (शरीर) आटोमैटिक। पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इनसे मिलकर बना है। और इसमें जो यह प्राणवायु नाभि में रहती है। प्राणवायु श्वांसा में, उदानयायु कंठ के ऊपर काम करती है, अपान वायु गंदी वायु को निकालता है। और व्यान और समान ऐसे यह पांच वायु हैं। इन्हें पाँच प्राण भी कहते हैं। तो यह आत्मा, प्राण वायु को अपनी इनर्जी देकर, शरीर में इसके साथ काम करता है। और जब यह प्राण शरीर को छोड़ देता है, तो वह अपनी जगह परमात्मा में लीन रहता है। और यह कहीं मरता या आता जाता नहीं है। इसलिए इसके घर को तो कोई जला नहीं सकता। जलने वाला वह पदार्थ है ही नहीं। जलने वाले तो पदार्थ यह-छिति, जल, पावक, गगन समीर हैं। आत्मा तो जलेगी नहीं।

तो लंका दहन के प्रसंग को, ऐसे लेना चाहिए। हमें ईश्वरीय कार्य करना है -साधना करनी है। हमें इन कथाओं में मनोरंजन नहीं करना है। इस तरह से साधक

अनेक उपायों से अपनी आसक्ति को समाप्त कर देता है, जब उसमें वैराग्य आता है।

दो.- पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि।

जनकसुता के आगे, तढ़ भयउ कर जोरि॥

जाकर सीता के सामने खड़ा हो जाता है। माता, अब मुझे कोई पहचान दे दो। अब मैं जाऊंगा। यहाँ का सब रीति-रवैया मैंने समझ लिया है, अब भगवान को यहाँ की खबर दे दूँ। अब आप चिन्ता न करिए, अब हम लोग राम लक्ष्मण के सहित बानर सेना लेकर आने ही वाले हैं।

दो.- जनकसुतहिं समुझाइ करि, बहु विधि धीरजु दीन्ह।

चरनकमल सिरु नाइकपि, गवनुराम पहिं कीन्ह॥

हनुमान वहाँ से आकर भगवान को सब खबर बताते हैं। तो साधक को चाहिए, कि जो भी दिनभर में उसने किया है, ध्यान में, अपने इष्ट के सामने उपस्थित होकर, रिपोर्ट करे। कि भगवान मैंने जो भी अच्छे बुरे काम किए हैं, वे सब आपको समर्पित हैं। मैं कुछ नहीं जानता। मैंने आपकी ही प्रेरणा से किया है। मैं आपके प्रति सर्वभावेन समर्पित हूँ। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है। सब आप ही करते-कराते हैं। मेरा मन विषय में गया या नहीं गया, यह आप जाने। आप ही इसे कंट्रोल करिये। इसे गाइड करिये, और मेरा जल्दी से जल्दी सुधार करिये। मुझे भगवान ही सबमें दिखाई पड़े। मुझे यह सब (संसार) न दिखाईपड़े। मुझे अब बर्फ न दिखाई पड़े। मुझे पानी ही पानी दिखाई पड़े। जिधर हम देखें, हमें परमात्मा ही परमात्मा, सबमें ओत प्रोत दिखाई पड़े। यह पदार्थ-जगत न दिखाई पड़े। हे भगवान! इस माया को आप समेट लीजिए और मुझे अपने स्वरूप का दर्शन कराइये। ऐसी प्रार्थना भगवान से करते रहना चाहिए, सदैव। और नहीं तो, शाम-सुबह ज़रूर करनी चाहिए। रोजाना लंका में आग लगाना चाहिये, बैठकर ध्यान में। और रोज प्रार्थना करना चाहिए। तो धीरे-धीरे परमात्मा सुन लेंगे। तो फिर ब्रह्मज्ञान रूपी बंदर चारों तरफ से इकट्ठे हो करके, संसार रूपी समुद्र में संयम रूपी सेतु बनाकर, आसक्ति रूपी लंका में घुस जाएंगे, और ये राक्षस, जो विकारों के रूप में अन्दर भरे पड़े हैं। इस काया रूपी किले में इन सबको मार-मार कर, खतम कर देंगे। तो फिर कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। शान्ति मिल जाती है।

चले हरषि रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधुफल खाए॥

रखबारे जब बरजन लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥

जब श्वासा का जप, आगे अजपा जप के रूप में होने लगता है, तब उस स्थिति में, मूर्धा या शशिमंडल में से अमृत निकलता है। जैसे खूब भूख लगी हो तो बढ़िया भोजन को देखकर मुंह में लार आ जाती है। उसको क्लोम रस कहते हैं। उसको योगिक प्रक्रिया में अमृतरस कहते हैं। यह तब मिलता है जब साधक भगवान का काम पूरा करने की स्थिति में आता है—साधना की उच्च अवस्था में जब श्वास के जप से, ध्यान से, साधक के नाभिकमल, हृदयकमल और कंठ कमल खुल जाते हैं। और ध्यान के द्वारा, अजपा की स्थिति बन जाती है, तो फिर यह अमृत निकलने लगता है। इसे मधुवन के फल भी कहते हैं। मधुवन के फल वही खा सकता है, जो भगवान का काम पूरा कर लेता है। जब साधक इस अमृत को पा जाता है, तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखता, फोर्स के साथ आगे बढ़ जाता है।

दो.- जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुवराज।

सुनि सुग्रीव हरष कपि, करि आए प्रभुकाज॥

जौ न होत सीता सुधि पाई। मधुवन के फल सकहिं कि खाई॥

तो यह पहिचान है इस बात की कि साधक अब ईश्वरीय कार्य में सफल होने की योग्यता प्राप्त कर चुका है। उस स्थिति को, उस अनूभूति को कहीं अमृत कहा गया है, कहीं मधुवन के फल कहा गया है—दोनों एक ही बात है। और यह सुरति, सुग्रीव है। यह राजा है। सुरति के होने से ही यम, नियम, त्याग, वैराग्य, अनुराग, आदि सद्गुण रूप सब बंदर इधर सहयोग करते हैं—भगवान के काम में साधन भजन में। सुरति भगवान से जुड़ गई, इसे भगवान पकड़ में आ गए, तो सब काम बन गए। कर्म रूपी बालि मरा, सीता का पता लग गया, लंका जल गई। और जब यह सुरति भगवान में नहीं लगी थी, तो क्या दशा थी—सुग्रीव की? बालि रूपी कर्म के मारे, भागा-भागा फिर रहा था। जान बचाना मुश्किल था। सुग्रीव और राम की मित्रता हनुमान ने कराई थी। वैराग्य अगर आ गया हमारे अन्दर, तो सुरति भगवान से जुड़ जाती है।

‘जोरी प्रीति दृढ़ाइ’

इस तरह से साधक के मानस में जो घटित हो रहा है वही है, यह रामायण। इसलिए इसे कहते हैं— रामचरित मानस। राम के चरित्र मन से। मानस में – अन्तःकरण में – जो चरित्र हो रहा है, वह राम कहानी है—इसमें। तो होना यह चाहिए कि बड़े-बड़े दिमाग वाले आदमी इसमें लगे, और खोज करें—वे लोग, जो दूसरे

कार्यों में न फंसे हों, तो फिर इसका रहस्य निकल सकता है। और मानस में राम चरित चरितार्थ हो सकता है।

प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

सुनु सुत तोहि उरि न मैं नाहीं। देखेउं करि विचार मन माहीं॥

पुनि पुनि कपिहिं चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥

दो.- सुनि प्रभु बचन, विलोकिमुख, गात हरषि हनुमंत।

चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत॥

जब सीता का पता लगाकर हनुमान आ गए, तो राम ने कहा कि हे हनुमान! मैं तुमसे कभी उग्रहण नहीं हो सकता। तुम्हारे इस उपकार का बदला नहीं चुका सकता।

राम ने कहा देवता ऋषि, मुनि संसार में जितने भी हैं, उन सबसे प्रिय मुझे तुम हो। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। भगवान ऋणी हो गए हनुमान के। हनुमान अगर एक बंदर को मान लिया जाय, तो बंदर भगवान से बड़ा हो गया। अगर हनुमान को एक आदमी मान लिया जाय, तो वह अजर-अमर हो गया और भगवान से बड़ा हो गया। ऐसा नहीं। हनुमान कोई बंदर नहीं। हनुमान कोई आदमी नहीं। हनुमान का मतलब है। अभिमान का जो हनन करे। वह है, राग का त्याग-वैराग्य। अंगद, अनुराग है। ये गुण हैं- सद्गुण हैं, जो हमारे तुम्हारे किसी के पास आ सकते हैं। जैसे गीता पढ़ते हो तुम लोग। उसमें आता है कि जब भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपना स्वरूप दिखाया, तो बोले-हे अर्जुन। मैंने तुम्हें जो अपना सही स्वरूप दिखाया है, उसे दूसरा कोई देख नहीं सकता। न तो इसके पहले कभी किसी ने देखा। और न भविष्य में कभी कोई देखेगा। तो फिर बस, अर्जुन ही अर्जुन रह गया। कोई और पहले न देख पाया था, और न अब कोई देख पाएगा। तो ऐसा अर्थ लेना ठीक नहीं रहेगा। अर्थ यह लेना चाहिए कि अर्जुन, अनुराग को कहते हैं। अनुराग तुम्हारे-हमारे सबके हृदय में हो सकता है। जिसके हृदय में भगवान के प्रति अनुराग आ जाय, वही भगवान के दर्शन कर सकता है। हां बिना अनुराग के नहीं हो सकता। इस अर्जुन के बिना कोई नहीं देख सकता। 'मिलहिं न रघुपति बिन अनुरागा।' तो अनुराग है अर्जुन। ऐसे ही हनुमान को लेना पड़ेगा। जब हनुमान से ऐसा कहा राम ने, तो हनुमान चिल्ला पड़े-भगवान। त्राहिमाम्, त्राहिमाम्। मेरी रक्षा करो। भगवान मेरी रक्षा करो। क्योंकि अगर स्वीकार कर लेते, कि हाँ ठीक कहते हैं आप, तो ईगो की बात आती है, इसलिये चिल्ला पड़े। क्योंकि हनुमान का मतलब है, जहाँ ईगो या

अभिमान न हो। और अगर अभिमान आ गया, तो निरभिमानता की स्थिति मर जायगी- अहंकार आ गया अगर, तो अभिमान रहित अवस्था न रह जायगी - यह हनुमान मर जायगा। इसलिए चिल्ला पड़े-बचा लो, बचा लो। ऐसे एडजस्टिंग की क्षमता होनी चाहिए, साधक में।

तो अब जैसे मिलेट्री में विजिलेंस स्कार्ट होता है, तो उसका कोई एक दो आदमी दुश्मन का पता लगाने जाता है, और वह टोह लेकर, जो रिपोर्ट देता है, उसी के अनुसार तैयारी होती है, आगे की। टोह लेकर हनुमान आ गए, रिपोर्ट दे दिया। अब उसे कार्य रूप में परिणत करना है।

जब साधक को वैराग्य भाव के जरिए ईश्वरीय क्षमता का पता चल गया। और यह भी पता चल गया कि काम, क्रोध लोभ आदि विजातीय तत्वों के बीच में वह फंसी है उसे पाने के लिए इन राक्षसों को समाप्त करना है। जीवात्मा-विभीषण से साक्षात्कार कर लिया। तो अब सारी जानकारी हो गई, अब साधना का क्रम आगे चला। ब्रह्मज्ञान रूपी बंदरों की सेना, में उत्साह आ गया। अभियान हो गया।

चला कटकु को बरनै पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छ चारी॥

केहरिनाद भालु कपि कर हीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥

दो.- यहि विधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।

जहं तहं लागे खान फल, भालु विपुल कपि वीर॥

साधक के सामने यह संसार उसकी राह रोके खड़ा है। संसार से निकलकर ईश्वरीय कर्तव्य में लगना है, साधना करना है। संसार रूपी समुद्र से पार हुए बिना कुछ नहीं हो सकता। सारी सेना आकर समुद्र के किनारे रुक गई। तो अब यहाँ पहला काम साधक का हो जाता है कि संसार से पिंड छुड़ा ले। यह संसार रूपी समुद्र बड़ा भयंकर है। अथाह विषय रूपी जल इसमें भरा है। इसका अनन्त विस्तार है। इसमें माया रूपी मगर और संशय रूपी सर्प आदि बड़े-बड़े भयंकर जीव-जंतु भरे पड़े हैं। संकल्प की लहरें उठ रही हैं। गोस्वामी जी विनय में कहते हैं -

‘कुणप अभिमान, सागर भयंकर घोर,

विपुल अवगाह दुस्तर अपारं ।

नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल,

संग संकल्प बीची विकारं ॥’

इस प्रकार का यह अहंता - ममता रूप संसार ही समुद्र है। यह हर एक के अन्दर से बाहर तक सर्वत्र फैला हुआ है। इसे पार करना है, न कि वह पानी वाला समुद्र। अरे भाई! इस संसार से छूटने का उद्योग करना है न कि समुद्र से कुछ मतलब है।

उहां निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गयउ कपि लंका॥

निज निज गृह सब करहिं विचारा। नहिं निशिचर कुल केर उबारा॥

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आए पुर कवन भलाई॥

उधर लंका के अन्दर हनुमान का आतंक छा गया है। विजातीय समूह में खलबली मच गई है। राक्षसों के अन्दर भय समा गया है। एक तरह से इनकी जड़ें हिला दिया हनुमान ने। 'प्रबल बैराग्य दारुण प्रभंजन तनय' - जिस साधक के अन्दर तीव्र वैराग्य काम करने लगा तो उसके प्रभाव से मन के विकार तेजहीन हो जाते हैं, दुर्गुण कमजोर पड़ जाते हैं। सद्गुण प्रसन्न होने लगते हैं। इधर सजातीय सेना में भारी उमंग और उत्साह छाया है। बंदर भालू सब गर्जना कर रहे हैं। उधर राक्षसों में भय व्याप्त है। सब घबड़ा रहे हैं।

इस स्थिति में मंदोदरी समझाती है रावण को। मंदोदरी बुद्धि को कहते हैं। मोह के आधीन है, तो भी सजातीय भावना लिए रहती है, इसलिए राम के पक्ष की ही बात करती है। मोहासक्त मन को सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न करती है। लेकिन रावण मानने वाला तो है नहीं। मंदोदरी को समझा बुझाकर रावण जब सभा में गया, तो वहाँ विभीषण ने बहुत समझाया, लेकिन वह तो इस काया रूपी किले के अन्दर बहुत ताकतवर हो चुका है। सबके ऊपर हावी है-ऐसे मोह का रूप है - रावण। वह मामूली नहीं है। सब विकारों का मूल है।

‘मोह सकल व्याधि न कर मूला।

पुनि तेहि ते उपजहिं बहु सूला॥’

तो साधक के अन्दर भले ही वैराग्य की आँधी से विजातीय पक्ष रूपी वृक्ष की डाली-डाली हिल गई हो, लेकिन यह मोह-रावण तो जड़ है इसकी। जड़ तो गहराई में है-जमीन को पकड़े है। यह जल्दी हिलती-डुलती नहीं। और न उखाड़े से उखड़ती है। इसलिए उस पर किसी का असर नहीं होता-किसी की बात नहीं सुनता रावण।

दो.- बार बार पद लागउं, विनय करउं कर जोरि।

परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसला धीस॥

मुनि पुलस्ति निज सिष्यसन, कहि पठई यह बात।

तुस्त सो मैं प्रभु सन कही, पाइ सुअवसर तात।।

रावण को विभीषण ने समझाया, और कहा कि जो मैं तुमसे कह रहा हूँ कि सीता को लौटा दो, राम से विरोध न करो, यह बात पुलस्त्य ऋषि ने अपने शिष्य द्वारा कहला भेजा है।

लेकिन रावण नहीं माना। हित की बात नहीं माना, तो नष्ट हुआ। पुलस्त्य का संदेश वह है, कि जो बात हमारे नाभि से - अपने अन्दर से - उठकर आती है, और बुद्धि उसे ग्रहण कर लेती है। वह कल्याणकारी होती है। उसकी अवहेलना अहितकर होती है। अब यह प्रसंग एक प्रकार से अंतिम निर्णय की अवस्था का है-भगवान की ओर जाना है या फिर संसारोन्मुख रहकर अपना सर्वनाश करना है निर्णय लेना चाहिए।

विभीषण जो है वह परमात्मा का रूप है, (जीवात्मा)। वह बता रहा है, यह बात। और जो इस शरीर में अन्वय व्यतिरेक युक्ति से चेतन का प्रतिबिम्ब है-अहंकार से युक्त, कि मैं बड़ा हूँ, मैं विद्वान हूँ, मेरी बराबर का कोई नहीं है - यह जो अहंकार है, इसमें अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब रावण का है। यह हृदय में, हमेशा चलता रहता है - क्या करें? क्या न करें? ये समस्याएं, ये संशय, ये विचार निरंतर आते रहते हैं। किसी का कहना रावण मानता नहीं। मतलब एक ऐसी अवस्था आती है, कि आदमी संसार के हाथों बिक चुका होता है। संसार की जितनी कल्पनाएं इच्छाएं हैं-पैसा की, बड़ाई की, घर की मकान की, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष - वासना इन सब विकारों से भर जाता है। फिर दूसरे को मान्यता नहीं देता। जब ऐसी स्थिति बन जाती है, तो रावण के जैसा बन जाता है। हर व्यक्ति के अन्तःकरण में, ये तत्व पाए जाते हैं - जो यहाँ बताए गए हैं। आत्मा रोकती-टोकती रहती है, कि ऐसा गलत काम न करो। परिणाम गलत आएगा। सही चलो। मन जब कहता है, कि विश्व के अधिपति बन जाएंगे, तो आत्मा हमें बताती है, कि ऐसा मत करो, भगवान से दूर हो जाओगे। न्यायोचित ढंग से चलो, मानवोचित तरीका अपनाओ, ऐसा न करो। यह आत्मा हमें हर प्रकार से समझाती रहती है। विभीषण अन्तःकरण रूपी दरबार में, इस मोह-रावण के प्रभाव क्षेत्र में भी, हमेशा सत् प्रेरणा देता रहता है। कोई माने या न माने। हमारे-तुम्हारे सबके अन्दर यह क्रिया होती रहती है, हम मानें या न मानें।' यहाँ पर यही चीज़ रावण के अन्दर आ रही है, कि जो तुमने अहंकार वश यह भगवान की शक्ति को छिपाकर रख लिया है, तुम्हें नष्ट कर देगी, तुम उस क्षमता को धारण नहीं कर सकते। राम से विरोध न पालो, वह सूर्य के समान है। जुगनू सूर्य के तेज के सामने ठहर नहीं सकता, सब तरह से

कहता है, लेकिन रावण नहीं मानता। जो इस प्रकार आत्मा के निर्देशों का उल्लंघन करता है, उसे नष्ट होना पड़ता है। इसका अर्थ है साधक को अपनी आत्मा के निर्देशानुसार चलना चाहिए और अपनी क्षमता का उपयोग ईश्वरीय कर्तव्य में करना चाहिए। इसके विपरीत संसारी माया-मोह में क्षमता का दुरुपयोग करने से अकल्याण होना निश्चित है। यह प्रकृति की आटोमैटिक नियमावली है। दूसरा कोई अस्त्र-शस्त्र उसको नहीं लेना पड़ता है। कृष्ण भगवान ने बहुत समझाया दुर्योधन को, कि झगड़ा न हो, कि सरलता से सुधर जाय। समझाया, कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। युधिष्ठिर राजा भी रहा है, योग्य भी है। वह नहीं माना तो फिर कहा, 5 गाँव ही दे दो-वह भी मना कर दिया। फिर अन्त में बोले, अच्छा भाई! कहीं रहने भर की जगह दे दो। तो दुर्योधन ने कहा, सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा। अब देखो, युधिष्ठिर तो कायदे पर चलने वाला था, और दुर्योधन अहंकारी था। वह कहता था कि जो मैं कहता हूँ, वही वेद-वाणी है। किसी दूसरे का कहना मैं नहीं कर सकता। यह नीति है-ये दो विपरीत विचार, काल भेद से होते आए हैं। देवताओं और दैत्यों के बीच यही विचार-भेद था। राम और रावण संग्राम, कृष्ण-कंस का संघर्ष, सबके पीछे यही नीति काम करती है। केवल देशकाल का भेद है-नीति वही है। अलग-अलग पुस्तकें बन गईं। अलग-अलग कहानी बन गईं। पुस्तकों के नाम अलग हो गये। लेकिन मूलतः लड़ाई सद्विचार और असद् विचार की है। इसे सद्-असद् भावनाएं कहो, सद् असद् वृत्ति कहो अथवा अच्छाई, बुराई कह लो। यह दोनों सबके अंतःकरण में होते हैं। काया का भेद है-कल्प-भेद है। नीति तो एक ही है। तो जो इंडिपेंडेंट (स्वतंत्र) संत हुए हैं, वे हैं, कि विभीषण की नीति को जिन्होंने स्वीकार कर लिया है। रावण के विचारों का हमेशा के लिए त्याग कर दिया है।

विभीषण ने इस अंतिम समय में, एक संदेशवाहक के रूप में, पुलस्त्य ऋषि की बात रावण से कही। पुलस्त्य-पुलह ये बड़े अच्छे ऋषियों के नाम हैं, जो सदैव एकरस रहते हैं। जो ईश्वर के अतिरिक्त औरकुछ देखते ही नहीं ऐसी स्थिति वाले महान आत्मा हैं। उनका संदेश दिया विभीषण ने। और पुलस्त्य के ही ये लोग वंशज हैं -

‘उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।’

शिव विरंचि पूजेहु बहु भांती।।’

उसी वंश-परम्परा के, ये लोग भी हैं, लेकिन रावण वगैरह ने इच्छाएं कर लीं। पुलस्त्य अनपेक्ष थे - महात्मा थे। शरीर तो सबके समान तत्वों से बने हैं। भगवान की कृपा, तो किसी शरीर पर होती है। जिस पर भगवान की कृपा हुई उसके मन -

बुद्धि सही दिशा में काम करने लगते हैं। वह अपने अहं को भगवान की इच्छा में विलीन कर देता है और उसी के हाथ की कठपुतली बन जाता है और सब कुछ प्राप्त कर लेता है। और जो अपने मैं को, अहं को, अपनी इच्छाओं को आगे रखता है, अहंकारी है वह नष्ट प्राय हो जाता है। विभीषण ने बड़ी आत्मीयता से रावण को समझाया, लेकिन वह नहीं माना। इस तरह से जो कोई भी मोहवश आत्मा के निर्देशों की अवहेलना करता है, उसके अन्दर समझो रावण ही बैठा है। साधक को सद्गुणों का संग्रह करके, आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश पाना है-दुर्गणों को छोड़कर, संसार से मुक्त होना है। सदाचार की नीति में ही परमात्मा, ऋषि, मुनि, महापुरुष, महात्मा सभी आ जाते हैं। सनक, सनंदन, सनत्कुमार सभी इसी नीति को लिए रहते हैं। और ऐसी ग्रेविटी (गुरुत्वाकर्ष) में आ जाते हैं, कि इसी में बने रहते हैं। वे संसार को देखते ही नहीं। काम, क्रोध, लाभ, मोह से मतलब ही नहीं रखते। इस नीति से अपने को इन्लार्ज करना है और भगवान के पेट में डाल देना है, इस संसार को। अन्यथा जूझते रहो इसी में-अगर अपनी दृष्टि से तुम्हें लेना है।

गोस्वामी जी ने लिखा है -

‘असकहि चला विभीषण जबहीं।

आयूहीन भए सब तबहीं।।’

विभीषण ने जैसे ही इन राक्षसों का परित्याग किया, ये सब मृतप्राय हो गए। जीवात्मा तो निकल गई। अब ये मुर्दे हो गए। इन बातों से, समझ में आ जाना चाहिये कि यह संसारी समाज की पुस्तक नहीं है। यह राजनीति की या इतिहास की पुस्तक नहीं है। यह अध्यात्म की पुस्तक है। यह अन्दर की दुनिया का विश्लेषण करने वाली पुस्तक है। इसलिए विभीषण की नीति को धारण करना चाहिए। जहाँ सत्य की धारणा बन गयी, तो काम बन गया। सबके अन्दर आत्मा है। उसका कभी नाश नहीं है-

‘ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी।।’

‘सो माया बस परेउ गोसाईं। बंधेउ कीर मर्कट कीनाई।।’

बंधा हुआ है। शरीर में, माया-मोह में, फंसा हुआ है। लेकिन निर्लेप है उसमें माया जा नहीं सकती। माया में फंसा है, तो भी माया उसे छू नहीं जाती। यह कला है उसमें, इसी को हमें पकड़ना है इसकी धारणा दृढ़ करना है। और माया तो है ही नहीं, है तो केवल ईश्वर। दो.- राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि।

मैं रघुवीर सरन अब, जाउं देहु जनि खोरि॥

अस कहि चला विभीषण जब हीं। आयूहीन भए सब तब हीं॥

तो विभीषण भगवान की शरण में गया। इतनी दूर तक जीवात्मा पर मोह का प्रभाव रहता है। वैराग्य रूपी हनुमान से भेंट हो जाय, तो फिर संसार से ठोकर खाकर, तिरस्कृत होकर, वह राम की शरण में आता है। आना चाहिए। यह जीवात्मा, परमात्मा का रूप है। मोहासक्त मन को यही राय देता है। मार्गदर्शन करता है। पर वह मानता ही नहीं। देखो महाभारत के युद्ध में भगवान कृष्ण अर्जुन का रथ हांकते थे। तो जब साधक ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है। तो भगवान हृदय में बैठकर, बागडोर संभाल लेते हैं। पग-पग पर संभालते हैं, युक्ति बताते हैं, रक्षा करते हैं-लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। जब कौरव पांडव आमने-सामने सेनाएं लेकर डट गये मैदान में। तो अर्जुन के रथ को लाकर दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दिया। अर्जुन ने पितामह भीष्म आदि सगे संबंधियों को देखकर युद्ध करने से मना कर दिया। धनुष फेंक दिया। मोह का प्रभाव था, अभी तक उसके मन में। श्री कृष्ण ने उसे ज्ञान कराया, कि इस मोह रूपी दुर्योधन पर विजय पाना है। तो भ्रमरूपी भीष्म, द्वैत-द्रोणाचार्य, कर्मरूपी कर्ण सभी को मारना पड़ेगा। तुम्हारा अपना भ्रम ही भीष्म है। यह सब हैं ही नहीं। मरे ही है। इसलिए जो तीनों कालों में है ही नहीं, उसके लिए तुम्हारा शोक करना ठीक नहीं है। जो तीनों कालों में सत्य है, वह आत्मा जो अचिन्त्य है, अज है, अविनाशी है, शुद्ध है, बुद्ध है उसे देखो। वही तुम्हारा स्वरूप है। तुम्हें इस प्रकार शोक करना उचित नहीं। तो यह साधक के अंदर की कहानी है। आत्मा ही कृष्ण है, साधक का अनुरागी मन ही अर्जुन है। उसे सब बताता है भगवान। और विजय करा देता है। साधना के लक्ष्य तक पहुँचाता है।

तो विभीषण ने परित्याग कर दिया जब रावण का, तो राक्षस सब आयुहीन हो गए। मर गए। मरे ही हैं, ये अन्तःकरण के विकार रूपी राक्षस। ये हैं ही नहीं। अच्छा बताओ, काम को किसी ने देखा, क्रोध को देखा, मोह को देखा, लोभ को देखा कभी, कहाँ रहता है, कैसे खाता है, कैसे सोता है? देखा कभी? जो है नहीं उसको छोड़ो, जो है उसे पकड़ो, तो सही एडजस्टिंग हो जायगी। इसी का नाम ज्ञान है। इसी का नाम गीता है, इसी का नाम वेद है। यही रामायण कहती है।

तुम्हारे अन्दर छः दुश्मन हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर। और छः शास्त्र भी हैं। महात्माओं से हमें मिले हैं। इनसे इन विकारों को काटो। यही शास्त्र, शास्त्र हैं। दस इंद्रियाँ, पाँच प्राण और मन, बुद्धि अहंकार। ये अठारह तत्व हैं तो 18

पुराण है। चार विभाग हैं अन्तःकरण के। तो चार वेद हैं। इनसे इन्हें शुद्ध करो। शुद्ध कर लोगे, तो ईश्वर आ जायगा। अशुद्ध रखोगे, तो संसार तो है ही।

इस तरह से विभीषण भगवान के पास पहुँच गया। पैट बदल दिया। गाड़ी सही लाइन पर आ गई। सिग्नल मिल गया-

‘जातहिं राम तिलक तेहि सारा।’

और उधर रावण वगैरह तो-

‘मरे के मरे रह गए। पड़े के पड़े रह गए।’

तो कुंजी यहाँ है (नाभि में)। यह विष्णु लोक है, कारण शरीर। यहाँ से संकल्प उठते हैं, फिर सूक्ष्म शरीर में आकर हृदय में अंकुरित हो जाते हैं, कंठ में आकर वाणी के रूप में वही संकल्प बाहर आ गया और कार्य रूप में परिणत हो गया। कुल मामला इतना है, और यह सबकुछ है नहीं। लाभ-हानि, अच्छा-बुरा, जन्म-मृत्यु ये दो शब्द मात्र हैं। इनका मतलब कुछ नहीं, वैल्यू कुछ नहीं है। हमने वैल्यू बना लिया है। क्योंकि समझते नहीं है। हम संसार रूपी जंगल में भटक गये हैं। हम भ्रम में पड़ गए हैं। हम चकाचौंध में पड़ गए हैं। हम रुखड़ी नाक गए हैं। हमारा रास्ता छूट गया है। हम जाते हैं उस तिराहे तक, और फिर घूमकर उसी जंगल में आ जाते हैं। यह सब झगड़ा तैयार हो गया है। और यह सब किया है, हमने। हमने अपने मन, बुद्धि इंद्रियों का दुरुपयोग किया है-इसी से यह झगड़ा खड़ा हो गया है। इंद्रियाँ शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध इन विषयों में दौड़ रही हैं। मन वासनाओं में फंसा है। बुद्धि संसार में लग रही है- ये सब अधोगामी हो गए हैं-उर्ध्वमुखी होना चाहिये। यही करना हमारा दायित्व है। जिसके मन, बुद्धि इंद्रियों की गति उर्ध्वमुखी हो जाती है। उसकी दुनिया बदल जाती है। विषय विकार निर्जीव हो जाते हैं, संसार निस्सार हो जाता है। पाप नष्ट हो जाते हैं। उधर मुड़े तो। ईश्वरोन्मुख तो है।

कह प्रभु सखा बूझिएकाहा। कहइकपीस सुनहु नरनाहा॥

जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥

भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बांधिमोहिं अस भावा॥

सखा नीति तुम नीक विचारी। मम पनसरनागत भयहारी॥

यह विभीषण (आत्मा) अजर अमर है। इसका कभी नाश नहीं हो सकता। यह कभी मरने वाली चीज नहीं है। इसको कोई कितना ही तंग करे। या कोई कितना ही सुख पहुँचावे। इससे सुख और दुख से कोई मतलब नहीं है। यह सुख से और दुख से दोनों से परे है। इसका ऐसा स्वरूप है। तो इस तरीके से जब यह जीवात्मा

अपने स्वरूप की तरफ रुचि लेने लगती है। और माया के परिवार का त्याग करने लगती है। जैसे हम लोग परिवार को छोड़ना चाहते हैं- माता, पिता, कुटुंब, कबीला को और ईश्वर को पकड़ना चाहते हैं। तो ईश्वर के पास भी एक परिवार है। वह सुरत है ईश्वर में लगाने वाली, वह सुग्रीव है। और वैराग्य है वह हनुमान है। अनुराग है वह अंगद है। धर्म है वह दधिबल है। यम, नियम नल नील हैं। ऐसे ही उसके पास भी परिवार है। तो जो उधर जाना चाहता है, तो वह परिवार भी अपनी परेशानियाँ जाहिर करता है परमात्मा से। कि आपसे मिलने आ रहा है। भगवान इसको क्या किया जाय ? तो ऐसे ढंग से जो अंतर्कथा है - ईश्वर से जीव के मिलने की जो प्रक्रिया है, उसको भी गोस्वामी जी ने कथा का रूप दे दिया है। उसको भी बाहरी नाटक का रूप दे दिया है। और इसी के द्वारा रामायन में इस विषय को समझाने का प्रयास किया गया है। ऐसे ढंग से इसकी रचना की गई है। तो शरीर में जो आसक्ति है वह लंका है। लंका के वासियों का बहुत बड़ा परिवार है। उनको ही भाई बंधु मान कर इस जीव रूप विभीषण ने उनके साथ नाता जोड़ लिया। और उनमें से कोई भी उसका कहना नहीं मानता। तो सब का त्याग करके अब वह ईश्वर की तरफ आ रहा है। अब जो ईश्वर का परिवार है, वह भगवान से कह रहा है कि भगवान ऐसा एक राक्षसों के बीच का आ रहा है। जिससे हमारा झगड़ा है, जो ठीक हमारा मौलिक विरोधी कुल है और उसी कुल का यह कोई सदस्य है। जानि न जाय निसावर माया। किस ढंग से आ रहा है। इसका त्याग करना चाहिये। मरम्मत करनी चाहिये। इसकी पिटाई करनी चाहिये। वह सब भगवान से यह कह रहे हैं। तो भगवान अंतर्दामी हैं। वह जो राम का सुप्रीम लेवल का रूप है। स्थाई है और एक रूप है। जीव कोटि का रूप विभीषण का है। है वही राम, वही आत्मा जो जीव बन गया है। जो संसार में जीने से संबंधित हो गया है। तो उस जीवन के जो साथी हैं। वह साथी सब त्याग कर दिये। जब इस प्रकार से त्याग हो जाय। और ईश्वर में अनुराग मन में आ जाय। और हम फिर इसको बाहरी संसारिक शरीर के स्तर से त्याग कर अंदर पहुंच जाँय। तो विचार के स्तर पर जाएंगे कि यह तो वही तत्व है, केवल उपाधि करके अलग-अलग है। वह जो हायर है विद्या उपाधि करके ईश्वर है, यह अविद्या उपाधि करके जीव है। और सुप्रीम लेवल का माया उपाधि करके परमात्मा है। वह स्थायी है। तो जब कहते हैं कि वह आ रहा है। जब सुरति सुग्रीव ने बताया तो भगवान कहते हैं, देखो, मेरी शरण में जो आता है, मैं उसे अभय दे देता हूँ। मैं किसी के ऊपर नाराज नहीं होता। मेरे लिये न कोई राक्षस है, न कोई दुश्मन है, न

कोई मित्र है। मेरे लिये सब एक ही हैं। मेरे लिये अलग-अलग नहीं है कोई। क्योंकि वह अभेद अवस्था है परमात्मा की, वहां न पाप है न पुण्य है।

कोटि विप्रबध लागै जाहू। आए सरन तजौ नहिं ताहू।

सन्मुख होइ, जीव मोहिं जबहीं। जन्म कोटि अघ नासउं तबहीं॥

तो जो मूल निर्णय है – समर्पण का, वह सबसे महत्वपूर्ण है। उधर भगवान तो हाथ पसारे बैठे हैं।

जो भी हो, जैसा भी हो, आए तो। तो, यहाँ तक साधक का काम है, आगे का काम भगवान संभाल लेते हैं।

भगवान की शरण में आते ही, वह राजा हो जाता है। विभीषण को राम ने जाते ही राजतिलक कर दिया—

‘जातहिं राम तिलक तेहि सारा।’

और उसे महाराजा! महाराजा! कहकर ही संबोधित करते रहे हमेशा। खुद पीछे हो गए, उसे आगे ले लिया। त्राहिमाम् करके गया था, महाराजा हो गया— यही नियम है।

‘राम ते अधिक रामकर दासा।’

आगे की कथा में मिलेगा कि विभीषण के बिना पूछे, राम ने एक कदम नहीं रखा। आगे-आगे रखा। और जहाँ संकट आया तो —

तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सोई सेला॥

इस तरह से भगवान के यहाँ की रीति-नीति साधक की समझ में बैठ जाय, और निर्णय सही आजाय, तो कल्याण का मार्ग मिल जाता है। ऐसे तो विभीषण जब लंका में था, तब भी भजन कर रहा था – लेकिन काम, क्रोध, लोभ, मोह के बीच फंसा पड़ा था। सौ पैसे में दस पैसा भजन हो पाता था। दस पैसा की क्या वैल्यू (कीमत) होती है कुछ? इस तरह से तो बहुत लोग भजन करते हैं—परिणाम नहीं आता। परिणाम के लिए समर्पण होना चाहिए। सौ प्रतिशत समर्पण। संसार हमें नहीं चाहिए। जब तक बिल्कुल निश्चय नहीं कर लिया जाएगा, कि अब हमें भगवान चाहिए— अब हम भगवान की शरण में जाएंगे, चाहे हम मर जायं—तब तक रास्ता नहीं मिलता।

हर साधक के अन्दर बैठा है, जीवात्मा रूपी विभीषण। उसे यह निश्चय करना चाहिए, कि अब तक मोह रुपी रावण को, मैं अपना भाई मानता रहा, लेकिन

नासमझी के कारण। अब मेरी समझ काम कर गयी, अब मैं इसका परित्याग करता हूँ। तो जिस रोज साधक, ऐसा दृढ़ निश्चय करके भगवान की शरण में आकर सम्पूर्ण समर्पण कर देता है, तो तत्काल भगवान उसे गोद में ले लेते हैं। ईश्वर के सामने हो जाय। क्लियर हो जाय। इच्छाओं से रहित हो जाय। कोई कामना न रह जाय संसार की। गीता में कहा गया है-‘अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गत व्यथा।’ इच्छायें न रह जायं। गोस्वामी जी ने भी मानस में इसी बात को अपने ढंग से कहा है कि - अनारम्भ अनिकेत अमानी। ऐसा होना चाहिये साधक को। जिस रोज ऐसा हो जायगा-भगवान उसे गोद में बैठा लेगा। ऐसे भक्तों के लिए भगवान हाथ फैलाए बैठे रहते हैं।

अब देखो जब विभीषण गया, तो उसे घेर लिया था बन्दरों ने। सुरति-सुग्रीव, वैराग्य हनुमान, अनुराग अंगद, नियम, नल नील आदि सजातीयों ने। विजातीय राक्षसों के बीच का मानकर, घेर लिया। सुग्रीव ने कहा कि यह रावण का भाई है, हमारा भेद लेने आया है-बांध लिया जाय। लेकिन भगवान ने कहा-‘मम पन शरणागत भयहारी।’

यह शुत्र-मित्र, पुण्यात्मा, पापात्मा संसार की नीति है। भगवान का नियम-कानून दुनिया से अलग है। जैसे सारी नदियाँ समुद्र में आती हैं-समुद्र किसी को मना नहीं करता, कि मुझमें न मिलो। ऐसे ही भगवान के दरबार में जो भी जाता है-स्वीकार कर लिया जाता है। हाँ, जाने वाले को, पूरे मन से जाना चाहिए- ‘यहाँ न काम अधूरो का।’ तो समुद्र रूपी ईश्वर है, भाविक भक्त रूप नदी-नालों को अपने में समाहित करता है। यह उसका धर्म है, गुण है।

परमात्मा जो सबसे परे है, वह सबसे निर्मल होता है। जो प्रकृति के गुणों के अन्दर की बातें हैं, वो निर्मल नहीं हो पाती हैं। तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण ये तीन घाटियाँ हैं। इन घाटियों में रहने वालों की शुद्ध वृत्ति होती नहीं। कभी बुरे विचार, कभी भले विचार। इन तीनों घाटियों को पार करके, त्रिगुणातीत जो हो जाता है, वह एक परिणाम माना जाता है। एक सिद्धान्त माना जाता है। एक पहुँच मानी जाती है। एक सत्य माना जाता है।

पापवंत कर सहज सुभाऊ।

भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥

जोपै दुष्ट हृदय अति होई।

मोरे सन्मुख आवकि सोई॥

तो यह बताइये जो पापी हो, वह शरण आ ही नहीं सकता और जो आ जायेगा वह पापी होगा नहीं। इसलिये यह कह देने में कौन फाँसी है। यह कला है इसमें। तो जब जीव मेरे सामने हो जाता है। तो कैसा भी हो, करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है। रुई के समान ज्ञानरूपी आग में पाप भस्म हो जाते हैं। कोई पाप या पुण्य नहीं होता। अब लोग सोचेंगे? कि करोड़ों ब्राह्मणों के वध का पाप जिसको लगा है। वह कैसे भगवान की तरफ आवेगा? तो भगवान की तरफ पापी ही तो आते हैं। जो पापी न होगा वह भगवान ही होगा। उसे आने की जरूरत है ही नहीं। और जो पापी होगा और अगर मनकर लेगा तो जरूर पहुंचेगा। पाप तो एक बाधा है। बनावटी रोकती रहती है कि जाय न भगवान की तरफ। अगर कोई जाने का मनकर लेता है तो पाप भाग कर दूर हो जाते हैं। नष्ट हो जाते हैं। वह तो कोहरा है जैसे ही सूर्य की रोशनी पाया भागकर अलग हो गया। बनावटी अँधेरा था। था नहीं। उसका नाम पाप है।

अच्छा, मान लिया जाय कि वह भेद लेने ही आया है। तो हमारा भेद क्या लेगा? हमारे पास भेद नाम की कोई चीज है ही नहीं। उस अभेद में भेद है ही नहीं। काल, कर्म, स्वभाव गुण आदि तो यह ईश्वर के पास होते नहीं है। इसलिये वह भेद कहां पाएगा? इसलिये यहाँ तर्क वितर्क करने की जरूरत नहीं है।

दो.- तब लगि कुशल न जीव कहुं, सपनेहु मन विश्राम।

जब लगि भजत न राम कहुं, सोक धाम तजि काम ॥

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छरमद माना॥

जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा॥

त्याग करे और काम इत्यादि दुर्गुणों का त्याग करे। और धाम जो जीव कोटि का धाम है। अविद्या अनुगत चेतन का प्रतिबिंब वह पूरे का पूरा जब तक त्याग नहीं करता तब तक कल्याण नहीं होता। तो यह आपकी ही कृपा से होता। इसमें बाहरी बात तो कोई नहीं है। इसमें जितनी बातें हैं। वह ईश्वर और जीव के बीच में होती हैं- वह आन्तरिक रहस्य है इसमें। राम अपने से बता रहे हैं। और पूछते भी जाते हैं।

‘खल मंडली बसहु दिन राती।

सखा धर्म निबहै केहि भाँती॥

बड़ी भारी खल मंडली में बसते हो, कैसे निभाते हो ? ऐसा पूछते हैं। और यह भी कहते जा रहे हैं कि -

‘मैं जानुं तुम्हार सब नीती।’

तो उससे पूँछते क्यों है ? जब सब जानते हैं। तो यह अपने से अपनी ही बात हो रही है। राम और विभीषण एक है - जीवात्मा, परमात्मा का ही रूप है। इसलिए यह गूढ़ रहस्य की बात है यहाँ। जब तक हृदय में काम क्रोध मोह लोभ मद मत्सर रहते हैं, तब तक भगवान धनुष वाण लेकर नहीं आते। और जब हृदय से कामक्रोध लोभ आदि निकल जाते हैं। तब फिर भगवान आ जाते हैं। तो यह ईश्वर और जीव के मिलन का प्रसंग है। मूल चीज है। और किन-किन चीजों के बीच में जीव फँसा है। और कैसे-कैसे परेशान होता है। आसक्ति लंका है। और ये दुर्गुण हैं तमाम प्रकार के। तो जिसके हृदय में इन सबका निवास हो गया है। वहाँ भगवान नहीं आयेंगे। जब साधक इनको निकाल कर बाहर कर देता है। या इनको छोड़कर निकल जाता है। तब फिर आ जायेंगे।

तजि मद मोह कपट छल नाना।
कर हुँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटेरी।
मम पद मनहि बाँधि बर डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाही।
हरष सोक भय नहि मन माँही॥
अस सज्जन ममउर बस कैसे।
लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥
तुम सारिखे संत प्रियमोरे।
घरउं देह नहि आन निहोरे॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा।
सुमन वृष्टि नभ भई अपारा॥

तो अब विभीषण राजा हो गया। जीवात्मा अपने स्वरूप को प्राप्त कर ले, तो अब इससे बड़ा राज्य और कहां मिलेगा। विभीषण जब राम के पक्ष में आ गया, तो अब कहानी यहाँ से नया मोड़ ले लेती है। वह जीवात्मा जब गाइड करने लगता है, तो साधक के सब काम बनते चले जाते हैं। अब साधना के उच्च स्तर पर पहुँच बन गई। अब यहाँ से छठवीं भूमिका में प्रवेश कर जाएगा। विजय के लिए अभियान अब निर्विघ्न रूप से होगा क्योंकि गाइड मिल गया है। अब हर मौके पर विभीषण से ही पूछा जायगा। तो ऐसा बाहर कहीं होता नहीं, कि दुश्मन के भाई को आते ही मालिक बना दिया जाय और हर मौके पर उसी की बात मानी जाय। उससे तो सतर्क रहेंगे लोग। लेकिन देखिए जब राम ने पूछा कि समुद्र कैसे पार किया जाय? तब विभीषण ने कहा कि यह समुद्र तुम्हारा कुलगुरु है, इससे प्रार्थना करो कि रास्ता दे दे। लक्ष्मण ने कहा अग्निवाण से सुखा दिया जाय। तो वहाँ लक्ष्मण की बात को पीछे करके विभीषण की बात मानी गई। साधक जो प्रगति कर गया है, वह अपने आत्मा के संकेतों पर चलने लगता है। अपने विवेक को पीछे रखता है। ऐसे इसे समझना चाहिए। वैसे इस स्तर पर पहुँचे हुए साधक का विवेक निर्मल होता है। उसमें जो बात आती है, वह सही होती है। लक्ष्मण की ही बात अन्त में आई, और राम को समुद्र के ऊपर धनुष उठाना ही पड़ा। तब भी नियम यही है कि इष्ट-संकेत के अनुसार चलने में ही भलाई है।

दो.- सुनत विनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।

जेहि विधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ॥

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई ऋषि आसिष पाई॥

समुद्र के किनारे बंदरों की पलटन लेकर पहुँचे राम। फिर वहाँ अपनी विनम्रता दिखाते हुये समुद्र की पूजा की, विनय की। कि भाई, तुम संसार के प्रतीक स्वरूप हो, इसलिए तुम्हारी हम पूजा करते हैं, तेरे को मना रहे हैं- कि कैसे इतनी बड़ी पलटन को पार ले जायं। जब समुद्र नहीं आया, तो क्रोध आया। तो फिर अग्निवाण संधान किया, और समुद्र सामने आ गया। राम ने पूछा कि तुमने क्यों नहीं हमारी विनय सुनी? तो उसने कहा कि यह तो मर्यादा आपकी बनाई हुई है-यह तो समुद्र सदा ऐसा ही रहता है। इसमें तो कोई हरकत (संवेदन) होती नहीं, आप अपनी बनायी मर्यादा को चाहे खतम करें, चाहे रखें। एक तरह से समुद्र ने, राम को लाजवाब किया। राम ने कहा ठीक है, लेकिन यह बताओ कि क्या कोई उपाय है, कि हम सेना को लेकर पार जा सकें? तो उसने कहा, कि आपकी सेना में ही है। पहले से ही प्रकृति की नियमावली बनी हुई है। उसको आप क्यों नहीं इस्तेमाल करते। ये

जो नल-नील दो बंदर हैं, लड़कपन में ऋषियों के बर्तन बगैरह सालिग्राम आदि पत्थर की चीजें समुद्र में फेंक देते थे, तो वे परेशान होते थे। तो ऋषियों ने आशीर्वाद दिया था, कि तुम जो भी पत्थर पानी में फेंकोगे वो तैरते रहेंगे। इसलिए ये हाथ लगायेंगे, तो बड़ी-बड़ी शिलाएं भी तैरती रहेंगी। यह पहले से नियम बना है। प्रकृति का। यह आज का नहीं है। यह संसार समुद्र है, विषय ही पानी है। यम नियम नल नील हैं। साधक सदा से यह क्रिया अपने अंतःकरण में अनादि काल से करते आ रहे हैं-आप ही नहीं आ गए। मोह रूपी रावण की, जो आसक्ति रूपी लंका है, उसको विध्वंस करने के लिये, मोह-रावण के विनाश के लिये, यह अनुसंधान निरंतर चलता रहता है। यम नियम के सहारे लाखों लोग प्रयत्न करते हैं, और उसमें कोई एक गुरु का लाल, सफलीभूत होता है।

तो जब गाड़ पकड़ में आ गया। अन्तरात्मा से स्पष्ट मार्ग दर्शन मिलने लगा और साधक अपने पुरुषार्थ का सदुपयोग करने में लग गया, तो पार होने में देर नहीं लगेगी। तो पहले तो समुद्र से राम ने प्रार्थना किया रास्ता देने को, क्योंकि कुलगुरु है। यह सब युक्ति, आत्मा रूप विभीषण, अब साधक के पक्ष में अन्दर बताने लगा। यह संसार समुद्र है। यह अनंत-अनंत समस्याओं वाला होने से बहुत विस्तृत है। साधक अपनी क्षमता से इसे सुखा सकता है-राम ने जब वाण संधान किया, तो आकर हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा। तो समझना चाहिए कि संसार प्रार्थना से कंट्रोल में नहीं आता। यम नियम रूपी नल नील की मदद लें। इंद्रियों का संयम रूपी सेतु बन जाय, तो सेना पार हो जाय-संसार की पकड़ से बाहर निकल सकते हैं। यम-नियम का पालन करो। इंद्रियों के विषय- उन्मुख काम जो हैं, ये डूबने वाले पत्थर हैं। जब यम-नियम का हाथ लग गया-सहारा मिल गया, तो सब काम ईश्वर उन्मुखहोने लगे। अब ये विषय में लीन नहीं होते-तैरने वाले पत्थर बन गए। विषयों से चित्त हट गया तो इंद्रियों का संयम आ गया। यह संयम रूपी सेतु बन गया। लंका पहुँच गए। अब वहाँ सब काम होते चले जाएंगे। तो यह सब गोस्वामी जी के स्वयं अनुभूत साधना का सांचा-ढांचा दिया गया है, मानस में। हमें इसी रूप में लेना चाहिए। अगर ऐसा लेकर साधना में लगेंगे, तो हमारा जीवात्मा रूपी विभीषण जो फंसा है विकारों के बीच-वह भगवान को पा जाएगा। राजा बन जायगा।

दो.- सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।

सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु बिना जल जान॥

अब गोस्वामी जीतो जगह-जगह बताते जा रहे हैं कि ये जो राम के चरित मानस में होते हैं ये कल्याण करने वाले हैं। इनमें ध्यान देना है, इन्हें सुनना और समझना है, इनका आदर करना है - इन्हें श्रद्धा पूर्वक अपने मानस में ढालते चलना है। जो साधक ऐसा कर लेगा वह बिना जलयान के इस भव-सागर को पार कर लेगा। पानी वाले समुद्र की तो बात गोस्वामी जी करते नहीं हैं और न किसी अन्य सेतु की बात करते हैं। वह तो यम, नियम और संयम पूर्वक नाम का आश्रय लेकर संसार से पार होने की बात करते हैं- 'नाथ नाम तब सेतु, नर, चढ़ि भव सागर तरहि'। इसलिए नाम का आश्रय लिया जाय, खूब श्वास - जप किया जाय, तो कल्याण अवश्य हो जायगा।

हरि: ओम